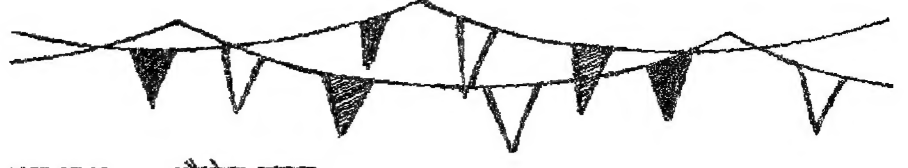
उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल
व्रत, त्यौहार एवं मेले

अध्ययनकर्ता

डॉ० अर्जुनदास केसरी

(राष्ट्रपति पदक-पुरस्कार प्राप्त)

संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश



सम्पादक **शैलेश कृष्ण**
निदशक, सस्कृति निदेशालय, उत्तर प्रदेश

सहसम्पादक . **श्रीमती अनुराधा गोयल**
उप निदेशक

डा० वीना विद्यार्थी
सहायक निदेशक

मुद्रक
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस
257 - गोलागंज
लखनऊ - 226 018



अनुक्रम

उत्तर प्रदेश के भोजपुरी भाषी जनपदो के त्यौहार (16-78) :

मेले-ठेले तथा उर्स और उत्सव आदि :



संदेश

भारत वर्ष पर्वोत्सवो का देश है। इस देश की मगलकारी परम्पराओ के कारण वर्ष पर्यन्त प्रत्येक दिन किसी न किसी पर्व का विधान है। सुख-शाति, समृद्धि, ऐश्वर्य, सौदर्य, स्वास्थ्य-आनन्द की निरन्तर अभिवृद्धि एव इन शाश्वत मूल्यो को स्थायित्व प्रदान करने के उद्देश्य से इन्हे पर्व त्यौहार से जोडा गया है।

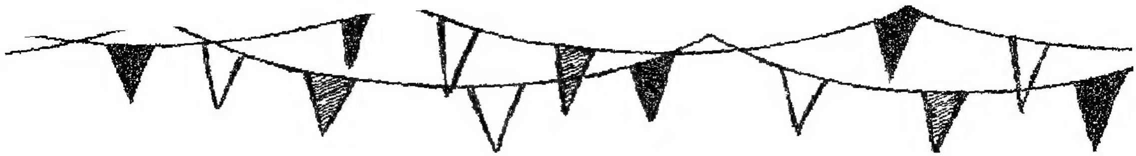
आज के आधुनिकीकरण की होड मे धीरे-धीरे इन मूल्यों से हम तटस्थ होते जा रहे हे जिसके परिणामस्वरूप पर्यावरणीय संतुलन, विश्व-शान्ति, पारिवारिक सामजस्य के छिन्न-भिन्न होने के कगार पर खडे हो गये है। यदि अब भी हम इन सकेतो के प्रति सजग नही हुये तो सम्भवत बहुत विलम्ब हो जायेगा। हम भाग्यशाली हैं कि विश्व की प्राचीनतम सस्कृति विरासत मे प्राप्त हुई है। इतिहास साक्षी है कि भारत ने सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान का मार्ग दिखाया है और जगलगुरू का सम्मान पाया। आज भी भौतिक उपलब्धि की अंधी अनियत्रित प्रतिस्पर्धा में लिप्त विश्व को भारतीय आध्यात्मिक मार्गदर्शन की आवश्यकता है। सस्कृति विभाग, उ०प्र० ने इस पुस्तक के माध्यम से प्रदेश के पूर्वांचल में प्रचलित व्रत, त्यौहार व मेलो का उपयोगी विवरण प्रस्तुत किया है जिससे इनमे अन्तर्निहित मूल्यो को जन-जन तक पहुचाया जा सके। अधिकाश व्रत व त्यौहार लोक रक्षा की दृष्टि से प्रतिपादित किये गये है। हमारे प्रमुख इष्ट देव भी इन्ही मूल्यो के प्रतिस्वरूप है। भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम है तो भगवान श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम। शिव कल्याणकारी हैं, तो विष्णु पालनकारी है, गणेश विघ्न-विनाशक है, तो माँ दुर्गा शक्ति-स्वरूपा है। अनन्त चतुर्दशी, कृष्ण जन्माष्टमी, गणेशोत्सव, दीपावली, महालक्ष्मी पूजन, धनतेरस, महाशिवरात्रि, रामनवमी, विजयदशमी, होली आदि पर्व इन्ही इष्ट देवो की महिमा-उपासना हैं।

आज पर्यावरण सरक्षण सर्वाधिक अहम् समस्या है। पशु-पक्षी वन-वनस्पति, जल-थल का सही महत्व हमारे पूर्वजो ने समझा था। यही कारण है कि इनकी रक्षा के लिये इन्हे वन्दनीय, पूजनीय माना गया और इस प्रकार कई पर्व और त्यौहार भारतीय जीवन से जुड गये। गोवर्धन पूजा, नागपंचमी, कुम्भ, गगा दशहरा, मकर सक्रान्ति आदि इसी भावना को चिर-स्थायी बनाने की मगल-कामना के प्रतीक है।

परिवार व्यक्तित्व के विकास की प्रथम और सर्वव्यापी इकाई है। पारिवारिक सम्बन्धो मे मधुरता, सामंजस्य ही व्यक्ति के विकास की आधारशिला है। ज्ञानोदय मे गुरू की महिमा अपरम्पार है। हमारी सस्कृति मे इन सभी सम्बन्धों को इहलोक मे ही नही वरन् परलोक मे भी यथोचित सम्मान देने की कामना की गयी है। इस दृष्टि से भैयादूज, रक्षाबन्धन, गुरू-पर्व, पितृ-विसर्जन आज भी प्रचलित हैं।

पुस्तक मे अन्य विभिन्न सम्प्रदायो के विशिष्ट पर्वों/उत्सवो, राष्ट्रीय पर्वो एव पूर्वांचल क्षेत्रान्तर्गत जनपदो में प्रचलित मेलों तथा उर्स का भी समुचित विवरण है। सस्कृति विभाग, उ०प्र० द्वारा सचालित अध्ययनवृत्ति योजना के अन्तर्गत डॉ० अर्जुन दास केसरी ने इस कृति को तैयार करने का प्रशसनीय कार्य किया है। वे बधाई के पात्र हैं। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक वर्तमान पीढी को पुन अपने सस्कारो की ओर आकर्षित करने और लोकप्रिय बनाने मे सफल होगी।

डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक'
मंत्री, सस्कृति एवं पूर्त धर्मस्व



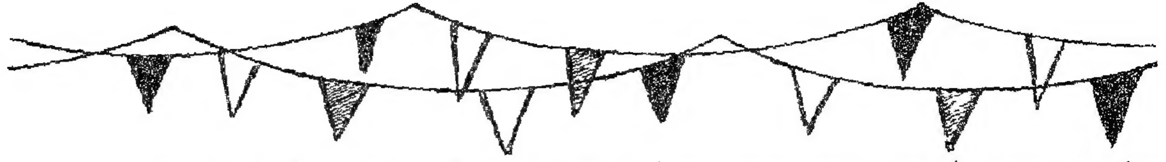
संदेश

भारतीय धर्म-साधना में अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष जीवन के उद्देश्य निर्धारित किये गये है। इनको प्राप्त करने के रास्ते भी बताय गये है जिनमे व्रत और उपवास का बड़ा महत्व है। वास्तव मे सकल्पपूर्वक किये गये कर्म को 'वत' कहते है। जहॉ कर्म है, वहॉ सकल्प भी अनिवार्य है और यदि सच्चा सकल्प है तो पुरुषार्थों अथवा लक्ष्य की प्राप्ति भी सुनिश्चित है। यह भी सच है कि मनुष्य को पुण्य के आचरण से सुख और पापाचार से दु ख होता है। व्रत, उपवास उसी दु ख की निवृत्ति के लिए किये जाते है जिनका निर्धारण लम्बे अनुभवो, अध्ययनो और ज्ञान-प्राप्ति के उपरान्त ऋषि-मुनियो द्वारा किया गया है। व्रत और उपवास मे परस्पर अगागिभाव सम्बन्ध है, इसीलिए संसार के समस्त धर्मों ने व्रत और उपवास की महत्ता स्वीकार की है। इससे आत्मशुद्धि तो होती ही है, शरीर भी स्वस्थ रहता है, मन भी एकाग्र हो जाता है, पवित्र विचार आते है, सयम का भाव पैदा होता है, मनोरथ-सिद्धि होती है शाति मिलती है। उपवास से जो अन्न बचता है, उससे न जाने कितने भूखो की भुभुक्षुओ शात होती है। जाहिर है कि इसका सार्वभौमिक महत्व है।

हॉ, व्रतो का अनुपालन शास्त्रोक्त विधि से नियमपूर्वक करना आवश्यक है। 'विश्वकोश' के अनुसार 'अनेक प्रकार के व्रतो मे सर्वप्रथम वेद के द्वारा प्रतिपादित अग्नि की उपासना रूपी व्रत देखने मे आता है। इस उपाराना के पूर्व विधानपूर्वक अग्निपरिग्रह आवश्यक होता है। अग्निपरिग्रह के पश्चात् व्रती के द्वारा सर्वप्रथम पौर्णमास याग करने का विधान है। इस याग को प्रारम्भ करने का अधिकार उसे उस समय प्राप्त होता है जब याग से पूर्व दिन वह विहित वत का अनुष्ठान सम्पन्न कर लेता है। यदि प्रमादवश उपासक ने आवश्यक व्रतानुष्ठान नही किया और उसके अगभूत नियमो का पालन नही किया तो देवता उसके द्वारा समर्पित हविर्द्रव्य स्वीकार नही करते।" (ना०प्र०स० काशी प्र०स० भाग ।।, पृष्ठ स०-108)।

व्रत मे दुग्धाहार, फलाहार का विधान है, किन्तु कथमपि मद्यपान, मासाहार अतिआहार, अधिक शयन, स्त्री-समागम परिहार्य नही है। सत्याचरण, मधुरभाषण, प्राणिमात्र के प्रति कल्याण की भावना, सद्ग्रथावलोकन अपेक्षित है।

समस्त व्रतो में एकादशी का सर्वाधिक महत्व है। इस दिन सम्भव हो तो उपवास रहना चाहिए, अन्यथा विकल्प मे लघु फलाहार, वह भी सम्भव न हो तो फिर एक बार ओदन (चावल) रहित अन्नाहार करने तक का विधान शास्त्र सम्मत है। वैसे व्रत तीन प्रकार के होते है- नैत्यिक, नैमित्तिक और काम्य। सत्यभाषण, पवित्रता, इद्रियनिग्रह, अक्रोध आदि नित्य कर्मव्रत है। किसी उद्देश्य को लेकर जो व्रत किये जाते है, उन्हे नैमित्तिक व्रत कहते है, यथा चाद्रायण। किसी



कामना की पूर्ति के लिए जो व्रत किये जाते है, उन्हे काम्यव्रत कहा जाता है, यथा पुत्रप्राप्ति।

इसी प्रकार स्त्रियों और पुरुषो के लिए अलग-अलग व्रत होते है। कुछ ऐसे व्रत है जिन्हे दोनों करते है। श्रावणी पूर्णिमा का व्रत पुरुषो का है तो हरितालिका व्रत केवल स्त्रियो के लिए मान्य है। एकादशी व्रत दोनो के लिए, कन्यादान जेसा व्रत दम्पति के लिए मान्य हे। पूर्वी उत्तर प्रदेश मे सत्य नारायण व्रत बहुत लोकप्रिय है जिसे सत्य नारायण भगवान की कथा सुनकर दम्पति द्वारा वर्ष, माह मे एक बार पूर्णिमा के दिन ही अधिकतर किया जाता है। कुछ लोग रविवार, कुछ सोमवार, कुछ मगलवार, कुछ शुक्रवार आदि दिनो को व्रत रहते है। जो भी हो भक्तिभाव श्रद्धा, विश्वासपूर्वक किया जाने वाला व्रत फलदायी होता है।

किंबहुना सस्कृति विभाग, उ०प्र० ने व्रतों, त्यौहारो और मेलो पर अधिकारी विद्वान, डॉ० अर्जुनदास केसरी से साग्रह प्रस्तुत पुस्तक लिखवाकर एक बडा और सराहनीय कार्य किया हे। इस पुस्तक मे सभी धर्मो, सम्प्रदायो मतो के स्वीकृत एव मान्य व्रतो, त्यौहारो का सागोपाग विवरण प्रस्तुत किया गया है। एक स्वीकृत अध्ययन-वृत्ति-योजना के तहत किया गया यह कार्य सुधी पाठको, विद्वानो, व्रतकर्ताओ, रचनाकारो, शोध-सग्रहकर्ताओ, पुस्तकालयो सभी के लिए उपयोगी होगा, ऐसा विश्वास है। व्रतो का सीधा सम्बन्ध त्यौहारो से होता है और त्यौहारो पर मेलो का भी आयोजन किया जाता है। अत इस एक ही पुस्तक से तीनों की जानकारी पाठको को हो जायेगी। ये तीनो हमारी सस्कृति क मूलाधार है।

अत मे मै इस महत्वपूर्ण आयोजन के लिए सरकार, सरकृति विभाग, लेखक, अधिकारी सभी को धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि इस तरह का स्थायी, अकादमिक कार्य कराने मे वे आगे भी रुचि लेते रहेगें। साधुवाद।

शैलेश कृष्ण
सचिव



प्रस्तावना

मनुष्य को कई दुर्लभ गुण प्राप्त हुए है, जैसे- ज्ञान, धर्म आचरण, स्नेह, दया, करुणा, प्रेम परोपकार, सत्य, अहिसा महत्वाकाक्षा आदि। ये सभी गुण अध्ययन, चिंतन, मनन, निनिध्यासन, ध्यान, तप, त्याग से आते है। इनका विकास सस्कारो से होता है। सस्कारो के कारण किसी भी जाति-समुदाय मे पैदा हुआ व्यक्ति "ब्राह्मण" हो सकता है। यहा ब्राह्मण का अर्थ- "प्रज्ञा" ब्रह्मज्ञान आचरण की पवित्रता और प्रबुद्धता से है। यह प्रबुद्धता नियम, सयम, व्रत, उपवास से आती है। इसी कारण हमारे यहां व्रतो, त्योहारो, मेलो-ठेलो क प्राय वर्षभर आयोजन होते रहते है और भारत को पर्वों और त्यौहारो का देश कहा जाता है।

इस कृति मे इन्ही का विवरण प्रस्तुत किया गया है। चारो वर्णो के चार मुख्य त्योहार- रक्षाबधन, दशहरा, दीपावली तथा होली, मुख्य रुप से मान्य है, वैसे तो सभी त्यौहार सभी जाति, सम्प्रदाय, वर्ग के लोग मनाने लगे है। इन मुख्य त्यौहारो के अतिरिक्त बारहो महीनो मे लगभग पचास और त्यौहार तथा व्रत मनाए जाते है जिनका पौराणिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक महत्व तो है ही स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उनका बडा महत्व है। कहते है मत्रो मे गायत्री और व्रतो मे एकादशी सर्वोत्तम है। इन व्रतो, त्यौहारो के साथ यात्रा, तीर्थयात्रा, स्नान, पूजन को भी अन्योन्याश्रित सम्बन्धभाव से ग्रहण किया गया है। इन सबका विवरण इस कृति म दिया गया है।

त्यौहारो और मेलो का बडा घनिष्ठ सम्बध है। प्राय सभी त्यौहारो पर मेले लगते है। तीर्थों मे विभिन्न पर्वों पर मेले का आयोजन किया जाता है। हमारे ऋषियो-महर्षियो ने जहा कही भी यज्ञानुष्ठान जप-तप किया, वे सभी स्थल तीर्थ बन गए और वहा मेले लगने लगे। नदियो के तटों पर मेले लगने लगे। सगम, पर्वत पहाड भी देवी-देवताओ, महापुरुषों के कारण तीर्थ बन गए और वहा मेले लगने लगे।

इस कृति मे उत्तर प्रदेश के भोजपुरी-भाषी 13 जनपदो के त्यौहारो और मेलो का विवरण दिया गया है। उत्तर प्रदेश सस्कृति विभाग द्वारा अध्ययन-वृति के अन्तर्गत जब यह कार्य हाथ म लिया गया तो लगा कि यह बहुत सामान्य और अल्प श्रम-साध्य है, किन्तु जैसे-जैसे इसमे डूबने-उतराने का अवसर मिलता गया, वैसे-वैसे इसकी गम्भीरता का बोध होता गया।



उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग भोजपुरी-भाषी है। इस क्षेत्र की मिश्रित सस्कृति है। काशी और प्रयाग, इन दो महातीर्थो के मध्य अवस्थित होने तथा उसके परिवेश से प्रभावित होने के कारण यह बहुत पहले से ही ऋषियो-महर्षियो, साधु-सतो, महापुरुषो, तीर्थ-यात्रियो, पर्यटको, यहा तक कि गृहस्थो को भी प्रभावित करता रहा है। यही कारण है कि यहा अगणित तीर्थ, व्रत, त्यौहार और मेले-ठेले लोगो को अनुप्राणित करते रहे। भोजपुरी-भाषी जनपदो मे मुख्य है- आजमगढ, गाजीपुर, गोरखपुर, देवरिया, मऊ, महराजगज, मिर्जापुर, भदोही, सिद्धार्थनगर, सोनभद्र, वाराणसी, बलिया और बस्ती। इन्ही जनपदो को दृष्टि मे रखते हुए, यहा के पर्वो-त्यौहारो और मेलो-ठेलो का सास्कृतिक और ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

वास्तव मे इस विषय पर अभी नही के बराबर काम हुआ है। लोकवार्ताओ पर काम करने-कराने की प्रवृत्ति का अभाव, अर्थ और समय-सकोच, घुमक्कडी प्रवृत्ति का न होना, इसके मुख्य कारण है। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इन पक्तियो के लेखक को बडे पापड बेलने पडे है, दर-दर भटकना पडा है, परिचय जोडना पडा है, मेल-मिलाप बढाना पडा है, यत्र-तत्र जोखिम भी उठाना पडा है, पुराने अभिलेख ढूढने पडे है, पूछताछ करनी पडी है। विशेष रुप से ग्राम्य-सभ्यता मे पली, निरक्षर, लज्जाशीला, अवगुठनवती महिलाओ के बीच से विषयवस्तु, प्रसग, सदर्भ-गीत निकालने पडे है, जो बहुत कठिन काम है। तथापि अतत सफलता मिली है। इस सफलता के लिए मै उन सभी विभागीय, गैर विभागीय अधिकारियो, लोकवार्ताकारो, कृतिकारो, वेदो, शास्त्रो, पुराणो के कथा-प्रसगो, पुस्तकालयो, सग्रहालयो के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होने मनसा-वाचा-कर्मणा इस यज्ञ की पूर्णाहुति मे अपना सहयोग प्रदान किया है। कृति प्रकाशित होने पर सुधी पाठको की ओर से उपयोगी सुझावो का मै स्वागत् करूँगा।

दिनॉक 17 मार्च, 1998 ई

अर्जुनदास केसरी
सचिव
लोकवार्ता शोध सस्थान
रार्बट्सगंज, सोनभद्र (उत्तर प्रदेश)



भोजपुर जनपद

बिहार प्रदेश मे बक्सर के पास भोजपुर नाम का एक जनपद है। लोगो का मानना है कि यहा एक विशेष प्रकार की माधुर्य गुण युक्त बोली बोली जाती है जिसे भोजपुरी कहते है। चूकि इसका आविर्भाव इस अचल भोजपुर से ही हुआ, इस कारण इसका नाम "भोजपुरी" पड गया। आरा भोजपुर बक्सर और रोहतास लगभग एक ही स्वभाव के क्रमवार जनपद है। यहा की बोली को खाटी भोजपुरी कह सकते है।

भोजपुरी भाषी-क्षेत्र .

भोजपुरी भाषी क्षेत्र के अतर्गत पूरब में नेपाल के पश्चिमी भाग से लेकर बिहार के जशपुर नगर तक अर्थात् लगभग सम्पूर्ण बिहार आ जाता है। इसी प्रकार उत्तर मे झासी, अकबरपुर, जौनपुर इलाहाबाद, मिर्जापुर, सोनभद्र (उत्तर-प्रदेश) तक तथा दक्षिण मे पटना, मुजफ्फरपुर, मोतिहारी, चपारण (बिहार) तक भोजपुरी बोली जाती है। इस पूरे क्षेत्र के अतर्गत उत्तर प्रदेश के पडरौना, देवरिया गोरखपुर, महराजगज, सिद्धार्थनगर, बस्ती, मऊ, आजमगढ, जौनपुर, वाराणसी, भदोही, मिर्जापुर, सोनभद्र, गाजीपुर, बलिया जनपद आ जाते है। इनके अतिरिक्त सीमावर्ती जनपद जैसे गोडा, बहराइच, सुल्तानपुर, फैजाबाद, अम्बेदकरनगर, प्रतापगढ एव इलाहाबाद अवधी-भाषी क्षेत्र होते हुए भी न केवल भोजपुरी प्रभावित जनपद है, वरन इनकी सस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, नाते-रिश्ते सभी कुछ भोजपुरिहो से ही प्रभावित है।

डॉ. जार्ज ग्रियसन तथा डॉ. उदय नारायण तिवारी ने भोजपुरी भाषा-भाषियो के अधिकार का क्षेत्रफल डेढ लाख वर्ग किलोमीटर प्रमाणो के आधार पर लिखा है। उत्तर प्रदेश मे ही 85 हजार किलोमीटर वर्ग क्षेत्र मे भोजपुरी भाषा-भाषी रहते है।[1] इसके अतिरिक्त अन्य देशो मे भी भोजपुरी-भाषी भारतीय प्रवासियों की सख्या बहुत अधिक है और वे मारीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायना, जमाइका आदि देशो मे निवास कर रहे है। भोजपुरी के पुरोधा गणेश चौबे के अनुसार भोजपुरी का अतर्राष्ट्रीय महत्व है। विश्व के अनेक देशो मे भोजपुरी बोलने वाले भाइयो के उपनिवेश है। भोजपुरियो के बल पर हिन्दी अपने लिए अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के रूप मे मान्यता पाने के लिए प्रयास कर रही है।[2]

1 *भोजपुरी लोक, मई, 1999, पृ-2*
2 *सेतु विश्व भोजपुरी सम्मेलन, देवरिया का प्रवेशाक (सदेश)*



पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिक डॉ. ग्रियर्सन ने अग्रेजो के समय मे ही भोजपुरी के महत्व को समझ लिया था और भोजपुरी भाषा का व्यापक सर्वेक्षण किया था। उन्होने लिखा भी था कि भोजपुरी सबल जाति की व्यावहारिक भाषा है। उसने पूरे भारत मे अपना अस्तित्व स्थापित कर रखा है। भोजपुरी और बगाली सभ्यताए हिन्दुस्तान की दो महत्वपूर्ण सभ्यताए है।[1]

भोजपुरी-सस्कृति :

"सस्कृति" शब्द अपने आप मे बहुत व्यापक अर्थ-बोधक है। उस सस्कृति में भी लोक-सस्कृति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, मै उस समुद्र मे गोते लगाना नही चाहता। हॉ, भोजपुरी सस्कृति के बारे मे कुछ बात करना अवश्य चाहता हूँ, क्योकि यही विषय मौजू और प्रासगिक है। सस्कृति के अन्तर्गत तीन विषय आ जाते है

(1) पुरातत्व,

(2) नृतत्वशास्त्र,

(3) समाजशास्त्र।

यहॉ पुरातत्व हमारा प्रतिपाद्य नही है। नृतत्वशास्त्र के सदर्भ मे भोजपुरी-जन की बात की जा सकती है। असली विषय है भोजपुरी अथवा भोजपुरिया समाज। सस्कृति और समाज एक-दूसरे के पूरक और पर्याय है।

वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, आभूषण, सज्जा तथा श्रृगार, सौदर्य प्रसाधन, मूल्य तथा मान्यताए, परपराए सस्कृति के मूलाधार है। यह सभी बहुत कुछ भौगोलिक परिस्थितियो, स्थानीय उपजो पर निर्भर करते है। भोजपुरी भाषी जनपद मानसूनी जलवायु के समशीतोष्ण है जहां जाडा, गर्मी, बरसात तीनो मौसम और छहो ऋतुओं का सुख यहा के लोगो को मिलता है। यही कारण है कि यहा के लोग अधिकतर सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र मौसम के अनुसार पहनते है। मर्द धोती और स्त्रिया ज्यादातर साडी ही पहनती है।

भोजन मे सभी प्रकार के अन्न, फल, सब्जी, घी-दूध लेते है। उत्तर-प्रदेश के भोजपुरी भाषी

1 *भोजपुरी इज दी प्रैक्टिकल लैग्वेज ऑफ ऐन एनर्जेटिक रेस, हिवच इज एवरेडी टू एकमोडेट इटसेल्फ टू सरकमस्टेसेज ऐंड हिवच हैज मेड इट्स इनफ्लूऐंस लेफ्ट आल ओवर इडिया। दी बेगाली ऐड दी भोजपुरी आर टू ऑफ दी ग्रेट सिविलिजर्स ऑफ हिदुस्तान, दी फारमर विथ हिज पेन ऐंड दी लेटर विथ दी।*
-- डॉ जी.एस ग्रियर्सन लिगिवस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया वालूम-5, पार्ट दो - पृ.-1



जनपद के लोग प्राय सादा, सात्विक, शाकाहार लेते है। वैसे मासाहार भी प्रचलित होता जा रहा है। आदिवासी मासाहारी-शाकाहारी दोनो है। शहद और रोटी उनका मुख्य भोजन रहा है। सामान्य भोजपुरिया दैनिक भोजन मे चावल, दाल, सब्जी, रोटी, चटनी, अचार लेता है। विशेष पर्वों-उत्सवो, त्योहारो पर अलग-अलग पकवान बनाकर खाने की परपरा भी रही है।

अधिकतर लोग कच्चे मकानो मे रहते है। गरीब झुग्गियो, झोपडियो मे अथवा सिफ्टवाइज रहते है। धनीवर्ग के लोग पक्का मकान बनवाकर उसमे निवास करते है। यहा का जीवन शहरी, देहाती और वन्य तीन भागो मे बॅटा है। कृषि प्रधान होने के कारण गोचारण यहा की मुख्य सस्कृति है। सयुक्त परिवार है। आचार-विचार शुद्ध, सात्विक, सादा और उच्च है। "सादा जीवन उच्च विचार' यहा का मोटो है। स्नेह, दया, करुणा, प्रेम, परोपकार, परहित-रक्षा, गो-ब्राह्मण, स्त्री, बाल-रक्षा, सत्य, अहिसा, धार्मिक भावना आदि सद्वृत्तिया सर्वत्र देखी जाती है।

रीतिरिवाज पुराने रूढिवादी, अधविश्वासी है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ उनमे परिवर्तन हो रहा है। पर्वों, त्यौहारो तथा मेलो-ठेलो के अवसर पर ये भावनाए उमडकर सामने आती है। लोकरीतिया स्त्रियो मे अधिक जड जमायी हुई है। प्रत्येक पर्व पर लोकरीति की परपरा के दर्शन होते है। टोना-टोटका, मत्र-तत्र, भूत-प्रेत का उपयोग यथावसर किया जाता है। प्रत्येक पर्व-त्योहार के लिए लोकगीत, कथाए, गाथाए कही-सुनी जाती है। बिना उनके समारोह अधूरा समझा जाता है।

आभूषणो मे विशेष रूप से स्त्रिया रुचि लेती है। गहने के बिना वे रह नही सकती। बाजूबद, बरेखी, नकबुल्ली, नथिया, झुलनी, कर्णफूल, कुण्डल, कगन, पैजनी, चूडी, लहठी, अगूठी, हसुली, कडा, छडा, करधनी यहा के लोकाभूषण है। आदिवासी महिलाए फूलो-मालाओ, पत्ता, घुमची आदि से अपना श्रृगार करती है। सरसो, तीसी का तेल लगाती है। सिन्दूर को सुहाग का प्रतीक मानती है। मेहदी रचाती है। गोदना के बारे मे उनकी मान्यता है कि यही अगले जीवन मे साथ जाता है, बाकी सभी वस्तुएं यही धरी की धरी रह जाती है। पर्वों, त्यौहारो, मेलो के अवसर पर इन श्रृगार प्रसाधनो का उपयोग अनिवार्य रूप से किया जाता है।[1] नर्मदेश्वर चतुर्वेदी के विचार से "इहा के पुरनका सास्कृतिक इतिहास बहुत साफ नइखे, बाकिर एतना त कहले जा सकेला कि ओह जमाना मे इहा अरण्य सस्कृति के बोलबाला रहल होई। एकर छाप आ सबूत हिमालय से विन्ध्याचल के बीच स्थित धर्मारण्य, सारण्य, अरण्य, अवरु चपारण्य जइसन पुरनका नावन मे पावल जा सकेला। निश्चय ही ओह घरी एह क्षेत्र

1 विस्तृत जानकारी के लिए देखिये लोरिकायन एक अध्ययन - डॉ. अर्जुन दास केसरी।



मे रहे वाला लोग वनवासी रहल होइहै।"[1]

यहा आज भी कोल, खरवार, बैगा, बैसवार, पनिका, परहिया पठारी, बादी, चेरो, कोरवा, गोड, दुसाध, धरकार, भर, आदि जनजातिया निवास करती है जिनकी मान्यताओ, मूल्यो, परम्पराओ मे पूजा-आराधना के अवसरो पर पृथ्वी, सूर्य, वृक्ष, पशु, कीट-पतग, नदी, जल, पर्वत आदि की पूजा की परपरा प्रचलित है।

उत्तर-प्रदेश के भोजपुरी भाषी क्षेत्र मे अधिकतर हिन्दू निवास करते है, अत उनके सस्कार हिन्दू-धर्म से प्रभावित हैं। यहा काशी सास्कृतिक नगरी शिवजी के त्रिशूल पर बसी बतायी जाती है और मोक्षदायिनी है। विन्ध्याचल को शक्तिपीठ की मान्यता प्राप्त है तथा मीरजापुर को "लक्ष्मी का नगर" कहा जाता है। भदोही को भद्रद्रोही कहा जाता है। गाजीपुर मुसलिम सस्कृति से प्रभावित होते हुए खण्डहरो, गुलाब-केवडा के बागो का पुराना जनपद है। जौनपुर गोमती के तट पर बसा मुसलिम सभ्यता का केन्द्र है। बलिया बुल्लियो की सस्कृति से प्रभावित भृगुक्षेत्र विश्वामित्र की तपोभूमि है। देवरिया-सिद्धार्थनगर बौद्ध और जैन धर्मावलबियो का तीर्थ है तो गोरखपुर गुरु गोरखनाथ की साधनास्थली। आजमगढ पवित्र तमसा से सिचित तथा पुराण-प्रसिद्ध कवि मनीषा की धरती है। बस्ती कबीर तथा फागूदास जैसे सतो-साधको की योगमत और सतमत की द्वन्द्वस्थली है।

इस प्रकार हम देखते है कि यह सम्पूर्ण क्षेत्र जहा एक ओर अपने आरण्यक जीवन के लिए विख्यात रहा है तो दूसरी ओर हिन्दू, मुसलिम, बौद्ध, जैन धर्म का केन्द्र भी रहा है। इस क्षेत्र का पौराणिक महत्व तो रहा ही है, ऐतिहासिक महत्व भी कम नही रहा है। यहा अनेक दुर्ग, किले, खण्डहर गुहागृह, जीवाश्म (सात अरब वर्ष पुराना मारकुण्डी-सलखन (सोनभद्र) प्राप्त है। यह शिव और शक्ति-साधना का केन्द्र रहा है। स्वतत्र चितन और साहसपूर्ण आचरण भोजपुरी सस्कृति की अपनी पहचान है। स्वतत्रता की लडाई का श्रीगणेश भी यही से मगल पाण्डेय, बाबू कुवर सिह द्वारा किया गया था। नालदा विश्वविद्यालय इसी क्षेत्र के पडोस मे था। विद्या, ज्ञान, कर्म, सादगी और मर्दानगी यहा की मिट्टी मे गन्ध की तरह इसकी विशेषताए है। ईंट का जवाब पत्थर से देना यहा के लोगो की खासियत है। यहा के लोग धुन और वचन के पक्के होते है। सिर पर पगडी, गले मे गमछा, हाथ मे लाठी, पाव मे पनही, माथे पर चदन, कमर मे पीताम्बर भी यहा की अपनी विशेषता है। जैसा कि कहा भी गया है-

1 भोजपुरिया सस्कृति - सेतु पृ - 89



माथे पगरी कान्हे लट्ठ।

तब देखा भोजपुरिया ठट्ट।।

सत्तू, बाटी, लिट्टी, चना, चबैना भी यहा की सस्कृति की पहचान है। काशी के बारे मे तो यह स्पष्ट कहा गया है-

"चना चबैना गग जल, जो पुरवै करतार।

काशी कबहु न छाडिए, विश्वनाथ दरबार।।"

लगोटा, दिव्य-निपटान और गगा-स्नान भी इसकी एक सस्कृति है। इस प्रकार भोजपुरी सस्कृति तमाम सस्कृतियो की मिली-जुली खिचडी और मौज-मस्ती की जिन्दगी का दूसरा नाम है।

भोजपुरिया समाज और जीवन .

सस्कृति का जीवन से बडा घनिष्ठ सबध है। सास्कृतिक जीवन ही वास्तविक जीवन है। समाज मे सास्कृतिक जीवन को मान्यता मिलती है। कभी भोजपुरी समाज बहुत समुन्नत था। यहा के लोग सोने की थाली मे भोजन करते थे, चांदी के पात्र मे पानी पीते थे। गरीबी भी कम न थी, कितु मेल-जोल, मोहब्बत से लोग दु ख बाट लेते थे। लोगो मे सतोष बहुत था। वे साग-सत्तू, साग-भात, सरई, महुआ, कोदई, सावा से पेट भर लेते, किन्तु कभी भी किसी का धन हडपने की नीयत नही रखते थे। गाव के परजुनियां काम-धधा करके जीवनयापन करते थे। लोहार लोहारी का, नाई बाल बनाने का, धोबी कपडा धोने का, चर्मकार जूते बनाने का, इसी तरह अन्य जातिया अपने-अपने पैतृक पेशे मे लगी रहती थी। समाज मे सबका सम्मान था। भाई-चारा बना हुआ था। अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए पूरे गांव के लोग एक हो जाते थे। एक वर्णन के अनुसार गावो मे ताले तक नही लगते थे। रगडो-झगडो का निपटारा राजा या गाव के मुखिया- गोडइत द्वारा पचायत-प्रथा से कर दिया जाता था। परिवार मे भी सभी मिलजुल कर रहते थे, कितु दुल्हने सास से डरती थी। ननद-भौजाई मे झगडे होते तो थे, परन्तु इनमे मिलन भी हो जाता था। कोई-कोई सासुए प्रताडनाये भी देती थी जिसका समर्थन पति भी करता था। भाई-बहन का प्यार घनिष्ठ देखा जाता है। इसी कारण बेटी की विदाई दु खदायी हो जाती है। यथा-

आमाके रोवले गगा बढि गइली, बाबा के रोवले अनोर।

भइया के रोवले चरन धोती भीजे, भउजी नयनवा ना लोर।।



समाज मे पत्नी का सम्मान भी बहुत है, किन्तु अपमानित होती है। श्रम का सर्वत्र महत्व है। उसी प्रकार निखट्टू, शराबी, चरित्र-भ्रष्ट पति की कही कद्र नही है। भोजपुरी समाज मे अतिथि देव-तुल्य है। माता-पिता और गुरु का सर्वत्र सम्मान है। इनका चरणस्पर्श किया जाता है। स्वपत्नी प्रेम मान्य है तथा "नारि मुये सन्यासी" व्यक्ति हो जाता है। कर्कशा नारि दु ख का घर है। अर्द्धांगिनी प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान, व्रत, त्यौहार मे साथ रहती है। हॉ, पुरुष स्त्री को कमाकर खिलाता है। स्त्री घर का कार्य करती है। बहुपत्नी-प्रथा वर्जित है। सौतिया डाह की चर्चा है। विमाता भी दु ख देती है।

तात्पर्य यह कि भोजपुरी समाज एक अनुशासित समाज है। सभी सम्बन्ध एक मर्यादा मे बधे है। जो मर्यादा तोडता है, समाज उसे बहिष्कृत कर देता है, अथवा अपने आप वह समाज से बहिष्कृत हो जाता है। एक वाक्य मे कहा जा सकता है कि भोजपुरी समाज आत्मानुशासन का समाज है।

भारत की आत्मा भारतीय त्यौहारो मे बसती है। वास्तव मे इस देश की धर्मप्राण जनता जीवन का उद्देश्य अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति समझती है। इसी के लिए देश के ऋषियो-महर्षियो, विद्वानो, रचनाकारो ने यज्ञो की कल्पना की थी और अपौरुषेय वेद जैसे ग्रथो की रचना भी की थी। कालान्तर मे वेदो के अतिरिक्त शास्त्रो, पुराणो, उपनिषदो तथा समय-समय पर प्रणीत अन्यान्य ग्रथो, वाणियो, आप्त वचनो, वैदिक और लौकिक आयोजनो-अनुष्ठानो, व्रतो-त्यौहारो, कथा-वार्ताओं, तीर्थाटनो, मेलो-ठेलो की परपरा भी प्रचलित हुई और इससे सामाजिकता का विकास हुआ। लोग एक-दूसरे से मिलने-जुलने लगे। एक-दूसरे के सुख-दु ख मे सम्मिलित होने लगे। कर्तव्य का बोध इन्हे हुआ। पर्यटन, गमनागमन से ज्ञानार्जन तो होने ही लगा, स्वास्थ्य भी ठीक होने लगा।

हमारे प्राय सभी धार्मिक अनुष्ठान वृक्षो, पशु-पक्षियो, पहाडा, नदियो-नालो-झरनो को केन्द्र बनाकर, सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि नवग्रहो को साक्षी मानकर सम्पन्न होते है। इन सबके पीछे कोन सी भावना काम करती है ? इन सबके मूल मे स्वास्थ्य, सदाचरण और पर्यावरण की भावना काम करती है। हमारे ऋषि-मुनि भविष्यदष्टा और पर्यावरण के प्रति जागरूक थे, इसी कारण उन्होने यज्ञो, व्रतो त्यौहारो, मेलो-ठेलो की अनिवार्यता पर बल दिया था। पशुओ की प्रदर्शनी लगती थी। वनस्पतियो की भी प्रदर्शनी लगती थी। नृत्य-सगीत-नाट्य के आयोजन होते थे। विद्वत परिषदें होती थी। शास्त्रार्थ आयाजित होते थे। कथाओ-वार्ताओ और उपदेशामृतो के आयोजन होते थे। काव्य-गोष्ठिया होती थी। इन सबके पीछे उपरोक्त समस्याओ का हल ही उसका उद्देश्य था।



इस कृति मे हिन्दू-त्यौहारो के अतिरिक्त मुसलमानो, सिखों, ईसाइयो के त्यौहारो का परिचय दिया गया है। इसी प्रकार इसके सॅमाजोपयोगी पक्ष भी दिये गये है। इसके पीछे यही उद्‌देश्य रहा है कि इस देश मे निवसित इन चारो सम्प्रदायो मे आपसी मेल-जोल, प्रेम-मोहब्बत, सास्कृतिक सामजस्य बढे और सभी एक सूत्र म बॅध जाये।

वास्तव मे भारतीय सस्कृति मे सबके उत्थान की बात कही गयी है। जीव-जन्तुओ, कीट-पतगो को भी अभयत्व प्रदान किया गया है। हमारे यहा सर्प, मगर, घडियाल, चूहा बिल्ली, सूअर, बन्दर को भी मित्र जीव माना गया है। ये किसी न किसी देवता के वाहन हैं, इसके पीछे कौन सा रहस्य छिपा है ? यही न कि सम्पूर्ण बह्माण्ड, पृथ्वी एक ही ईश्वर की सृष्टि है। यहा सबका समान महत्व है। सभी को सुखी-सम्पन्न, निर्भय, निरोग, कल्याणकारी भावनाओ-विचारो वाला, प्राणिमात्र क लिए शुभेच्छु होना चाहिए।

"सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चितः दु खभाग भवेत।।"



उत्तर प्रदेश के भोजपुरी-भाषी जनपदों के त्यौहार

अनन्त चतुर्दशी

अनन्त चतुर्दशी विष्णु उपासना का प्रतीक पर्व है। विष्णु जगत के पालनकर्ता है। भाद्रपद की शुक्लपक्षीय चतुर्दशी को विष्णु भगवान के पूजन की परपरा अनादिकालीन है। "विष्णु पुराण" मे इनकी महिमा का विस्तृत वर्णन मिलता है। अभिजात्य और जनजातीय वर्गों मे भी विष्णु की पूजा का विधान है। अनन्त चतुर्दशी के दिन आदिवासी जातिया नृत्य-संगीत का आयोजन करती है जो प्राय चौबीस घण्टे तक निरतर चलता है। पूर्वांचल के भोजपुरी भाषी जनपदो मे प्रत्येक घर मे अनन्तदेव की पूजा की जाती है। इस दिन अनन्तदेव कच्चे धागे से बनाये जाते है। उन्हे हल्दी के रग मे रगकर बाह मे पहना जाता है। हमारे यहा प्रत्येक पर्व पर कुछ विशिष्ट प्रकार के भोजन-व्यजन बनाने की परपरा है। इस दिन सेवई और पूडी बनाकर खायी जाती है। भोजन की इस विविधता के कारण पर्व की याद रहती है। पूर्वांचल के प्राय प्रत्येक जनपद और गाव मे विष्णु की प्रतिमाए मिल जाती है।

ऋग्वेद मे विष्णु को कई पदार्थों का वाचक कहा गया है।[1] सूर्य की व्याप्ति के पीछे विष्णु का ही महत्व है। मृग, अग्नि और सोम को भी विष्णु कहा गया है। डॉ. जनार्दन उपाध्याय के अनुसार "विष्णु, ब्राह्मण, वैदिकोत्तर साहित्य, पुराण, इतिहास, काव्य आदि मे ईशत्व को प्राप्त कर सर्वजन पूज्य हो गये। पुराणो मे विष्णु का रूप इतना प्रांजल और भाष्कर हुआ कि उनके विभिन्न अवतारो तक की कल्पना कर ली गयी। भक्ति आन्दोलन द्वारा यही विष्णु जनमानस मे और प्रगाढ ढग से प्रतिष्ठित हो गये।[2]"

विष्णु लोक-रक्षक देवता हैं। इसी कारण उनका अवतार मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण के रूप मे भी हुआ। इनके विभिन्न रूपों की आराधना से सुख-शाति, सम्पन्नता, समृद्धि, आनन्द, मंगल की प्राप्ति होती है। प्रसन्न-मुख विघ्न-निवारक है। जब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण भगवान से पूछा कि सकट से मुक्ति के लिए क्या करना चाहिए तो श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से अनन्त भगवान की उपासना का निर्देश देते हुए कहा था-"मै ही अनन्त हू, मै ही विष्णु हू। इसलिए मुझे

1. ऋग्वेद विष्णुसूक्त 1/154
2. आज साय समाचार (सा नि) 17 सितम्बर, 1972 पृ - 67



ही अनन्त, विष्णु, जनार्दन समझकर पूजन करो।'' अनन्त व्रत कथा के आरभ मे उल्लिखित भी है-

''शुक्लावरधर विष्णु शशिवर्ण चतुर्भुजम्।

प्रसन्नवदन ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशातये।।''

विष्णु के रूप की जो कल्पना की गयी है, उसका प्रतीक मूर्तियो के रूप मे देखी जाती है। सिर पर मुकुट, कानो मे कुडल, गले मे हार और घुटने तक जनेऊ, चारो भुजाओ मे शख, चक्र, गदा और पद्म, विशाल वक्षस्थल, मुखमुद्रा पर तेजस्विता।

अनन्त का अर्थ है जिसका अत न हो, शाश्वत्, चिरन्तन, सर्वव्यापी, आकाश की सीमा तक व्याप्त। इस व्याप्त की खोज कौण्डिल्य नामक मुनि शीला के साथ करते-करते जब थक जाते है और तब भी जब इसकी प्राप्ति नही होती तो आत्महत्या के लिए तत्पर होते है, उसी समय अनन्त भगवान आकर उन्हे दर्शन देते है, उन्हे वैष्णता प्रदान करते है। लोक मे भी अनन्तदेव की पूजा के समय पानी भरे घडे मे अनन्त देवता की खोज की जाती है। यत्र-तत्र किसी बडे कटोरे मे भरे दूध के अदर से मथकर अनन्त देवता को खोज निकाला जाता है। चादी के पत्तर पर अनन्त (विष्णु) की लघु प्रतिमा बनायी जाती है। उसे दूध मे रखकर पूजा जाता है। पूजने वाले उसमें हाथ डालकर अनन्त देव को खोजते है। पण्डित जी अथवा कोई एक पूछता है-

"का खोजऽथवऽ"

"अनन्त देवता"

"पवला"

"पवली"

जो सर्वव्याप्त है, उसे खोजना क्या है ? लेकिन आत्मज्ञान, आत्मबोध न होने के कारण उसे खोजना पडता है। कौण्डित्य को आत्मज्ञान होने पर अनन्त की प्राप्ति हुई। उसी प्रकार प्रत्येक मरजीवा उस अनन्त की खोज मे लगा रहता है। सत, महात्मा, कवि, मुनि, ऋषि, ज्ञानी, ध्यानी सभी उसी की खोज मे भटकते रहते है, किन्तु जब कस्तूरी मृग की तरह भटकते-भटकते थक जाते है तो उन्हे अनन्त की प्राप्ति हो जाती है। डाक्टर कृष्णदेव उपाध्याय लिखते है कि - "विष्णु का पूरा चित्र ही सूक्ष्म अध्यात्मिक सकेत करता है। विष्णु का श्याम रग अनन्त आकाश का प्रतीक है। चार हाथ चारो दिशाओ एव उनके सर्वव्यापक होने को सकेतित करते है। शख, चक्र, गदा, पद्म क्रमश शब्दब्रह्म, रक्षातत्व, रक्षा एव सृष्टि तत्व को व्यक्त करते है। ''ज्ञानाहक्चारकेश्वर्य शब्द ब्रह्मासि केशव। चक्र पद्म



गदा शख परिमाणिनी धारयन।।'' शेषनाग काल का प्रतीक है। विष्णु का उस पर शयन काल के वशीकरण को घोषित करता है। सृष्टि की रक्षा का द्योतक कमल है। सृष्टि के साकार रूप ब्रह्मा इस कमल पर प्रकट होते है"।

इस प्रकार अनन्त की आराधना हर प्रकार से श्रेयस्कर है। वर्ष मे एक दिन ऋषियो-महर्षियो ने अनन्त चतुर्दशी की तिथि इसके लिए निश्चित करके हमारा बडा उपकार किया है। इस दिन व्रत रहकर हम अपने इष्ट को प्राप्त कर सकते है। अनन्त व्रत बहुत आसान है। दोपहर 12 बजे तक व्रत रहकर प्रसाद अथवा पक्का भोज्य पदार्थ ग्रहण करने का विधान है। इसीलिए इस व्रत को स्त्री-पुरुष, बडे-बूढे बालक सभी कर सकते है।

कजरी की नौमी .

कजरी हिन्दुओ का त्यौहार और मेला दोनो है और इसकी बडी व्याप्ति है। विन्ध्य-क्षेत्र मे इसके भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा से बावन द्वादशी तक कई आयोजन विभिन्न स्थानो पर होते है। मिर्जापुर नगर मे कजरी-गायन, जुलूस, दगल और अखाडो का वृहद आयोजन स्त्री-पुरुष सभी के द्वारा समारोहपूर्वक किया जाता है। बुन्देलखण्ड मे श्रावणी पूर्णिमा को कजरी का जुलूस निकलता है। पूर्णिमा से एक सप्ताह पूर्व "जई" छाया मे जमाई जाती है। जो सात दिन मे बडी पीले रग की होकर स्त्रियो द्वारा पूजी जाती है। जिस दिन जई बोई जाती है उसे कजरी की नौमी कहते है। इस दिन स्त्रिया व्रत रहती है। यह जई जिस घर मे जमाई जाती है, उसकी दीवार पर गेरू, हल्दी, रोली, चावल से देवी की आकृति जैसे कुछ चित्र बनाये जाते है। वहा बैठकर स्त्रिया कुछ कहानिया कहती हैं।

''एक बन्ध्या स्त्री थी। उसने एक ऐसा नेवला पाल रखा था जिसकी माँ मर चुकी थी। उसे वह अपने पुत्र का बडा भाई कहती थी। सयोग से उसे गर्भ रह गया और एक सुन्दर शिशु का जन्म हुआ। श्रावण शुक्ल नौमी का जब दिन आया तो वह स्त्री शिशु को पलग पर लिटाकर जल भरने चली गयी और उसकी रक्षा का भार नेवले पर छोड दिया। उसी बीच एक सर्प आ गया और पालने की ओर झपटा जिसे नेवले ने टुकडे-टुकडे काट डाला।

तब तक उसकी माँ जल भरकर द्वार पर आ गयी। नेवला अपनी बहादुरी दिखाने के ख्याल से बाहर निकला। उसके मुख मे लगा रक्त देखकर उसने समझा कि नेवले ने शिशु को काट खाया



है, अत उसने घडे का जल उसके ऊपर पटक दिया जिससे नेवला तत्क्षण मर गया। किंतु जब वह घर के भीतर गयी तो देखा शिशु खेल रहा है और सर्प मरा-कटा पडा है। उसे भारी दु ख हुआ और वह अपने किये पर पश्चाताप करके रोने लगी। यह बात जब अन्य स्त्रियो को मालूम हुई तो वे सब भी पहुच गयी, उसे बहुत समझाया, उसी दिन कजरी के नौमी का व्रत था। उसने इस घटना को चित्रवत् अकित किया। तभी से इस घटना की स्मृति मे यह व्रत रखा जाता हे।

कृष्ण जन्माष्टमी :

भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं तो भगवान श्रीकृष्ण लीला पुरुषोत्तम। इन दोनो ने ही भारतीय जनमानस को अनुप्राणित किया है। यही कारण है कि इनके जन्मोत्सवो को हमने त्यौहार का रूप दे दिया है। कोई उत्सव जब त्यौहार बन जाता है तो उसमे स्थायित्व आ जाता है। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव लगभग पूरे देश मे तथा यत्र-तत्र विदेशो में भी धूमधाम से मनाया जाता है। यही एक त्यौहार हे जो हर घर मे प्राणी-प्राणी द्वारा मनाया जाता है। इस दिन व्रत रखा जाता है। श्रीकृष्ण की झांकियां सजायी जाती है। खीरा के भीतर श्रीकृष्ण जन्म लेते है। मथुरा-वृन्दावन का प्राकृतिक दृश्य झाकी के माध्यम से उपस्थित किया जाता है। धनियां का चूर्ण (पजीरी), सिघाडा का हलवा केला, सेब, मिष्ठान का प्रसाद वितरित किया जाता है। प्राय बारह बजे रात तक भजन-कीर्तन, नृत्य, सगीत, रासलीला आदि का आयोजन करके ठीक बारह बजे रात श्रीकृष्ण का कारागार मे जन्म दिखाया जाता है। आरती उतारी जाती है। मगलगीत गाये जाते है। मथुरा-वृन्दावन मे यह उत्सव लगभग महीने भर चलता है जिसे देखने के लिए देश-विदेश के भक्तगण उपस्थित होते है। हर जगह मेले का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

श्रीकृष्ण लोक के देवता है। लोक-कलाओ मे श्रीकृष्ण की अभिव्यक्ति अनेकश हुई है। इन्हे कही माखन-चोरी करते, कही नाग-नथैया करते, कही गाय चराते, कहीं चीरहरण करते, कही वशीवादन कर सबको मोहित करते, कही राधा के सग कुज-विहार करते तो कही माता यशोदा की गोद में बैठकर दुग्धपान करते, कही दुष्टो का सहार करते तो कही युद्ध करते और फिर अर्जुन को गीता का उपदेश देते भी प्रदर्शित किया गया है। इस तरह न जाने कितनी मोहक छवियो की भाव-मुद्राएं लोक कलाकारो की तालिकाओ की श्रृगार बनी है। श्रीकृष्ण के ये चरित्र कही भित्तिचित्रो मे, कही मदिरो की छतों पर, अल्पनाओ के रूप मे, कही लकडी के खिलौनो पर बनाये जाते है। दक्षिण भारत



मे लकडी के बडे सुन्दर खिलौनो पर तो उडीसा और बगाल के भित्ति-पटटो पर रसिया कृष्ण के नाना रूपो को दिखाया जाता है।

श्रीकृष्ण का जीवन-चरित्र हमे संघर्ष की प्रेरणा देता है। वह कारागार मे ही जन्म लेते है। अन्य स्थान पर माता यशोदा के यहा उनका पालन-पोषण होता है। जन्म से पूर्व कस प्रतिज्ञा करता है कि देवकी का आठवा लाल मेरा काल नही बन सकता। मै उसे जीवित मार डालूगा। इन सघर्षों के बीच वे रास्ता निकाल कर अपने प्राणो की रक्षा ही नही करते, अपितु कस-सहित अनेक दुष्टो का सहार भी करते है। वे एक साथ देश-रक्षक, गोरक्षक, जन-रक्षक, मोहासक्त महान वीर अर्जुन के लिए कर्तव्य और पुरुषार्थ के उत्प्रेरक भी है। वे शिशुपाल जैसे दुष्टो के काल, युद्ध-संगीत, वाद्य-कला विशारद है। वे प्रेम, शौर्य और बलिदान के अवतार है। ज्योतिषी राधेश्याम द्विवेदी के विचार से वस्तुत. श्रीकृष्ण नही होते तो भारत की सस्कृति, स्वाधीनता, वीरता और कर्तव्य-परायणता लुप्त हो जाती। जब तक उनकी गीता है तब तक सारा जगत् निर्भय और आत्मबल से बलवान है। इसीलिए आर्यवर्त के उस महान उद्धारक की जयन्ती हजारो वर्षो से अविच्छिन्न रूप से मनायी जाती रही है और भारतवासी अवतार रूप मे अपने इस महापुरुष की वन्दना-अर्चना, उपासना करते चले आ रहे है।

श्रीकृष्ण का अवतार आज से पाच हजार वर्ष पूर्व हुआ था। तब से आज तक उनकी लीलाओ का गायन होता चला आ रहा है। अगणित भक्तो, कवियो, कलाकारो ने उनके जीवन-चरित्र को अपनी वाणी, लेखनी, तूलिका का श्रृगार बनाया है जो हमारे लिए निरतर प्रेरणाप्रद बना रहेगा। उनका जन्मोत्सव इसका आधार है।

कार्तिक पूर्णिमा ·

कार्तिक मास मासो मे पुण्यमास है जिसमे माह भर अनेक पर्व और उत्सव मनाये जाते है। यह गगा-स्नान और दीपदान का पर्व है। इस दिन रोहिणी नक्षत्र पडे तो और फलदायी होता है। एक उल्लेख क अनुसार- "इसी दिन सायकाल के समय भगवान का मत्स्यावतार हुआ था। इसीलिए इस दिन दिये गये दान का दस यज्ञो के समान फल होता है। यदि इस दिन कृत्तिका का चन्द्रमा और विशाखा का सूर्य हो तो पदनक नामक योग होता है जो पुष्कर मे भी दुर्लभ है। इस दिन चन्द्रोदय के समय शिवा, सभूति, सतति आदि छह कृत्तिकाओ का पूजन करना चाहिए। कार्तिकी पूर्णिमा की रात्रि मे व्रत करके यदि वृष का दान दिया जाय तो शिव-पद की प्राप्ति होती है। इस दिन उपवास



श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर रासलीला का मोहक दृश्य



दीपोत्सव



मेले म लाकगायका



जइया देवी-पूजा   नवरात्र के अवमर पर देवी-साधना का अनाखा दृश्य



करके भगवान का स्मरण करने से अग्निष्टोम के सामान फल मिलता है और सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार यदि इस दिन स्वर्ण का मेष दान किया जाय तो ग्रहयोग के कष्ट नष्ट हो जाते है।"[1]

यह भी कहा जाता है कि इस दिन शिवजी ने त्रिपुरा राक्षस का वध किया था। इस सबध मे एक कथा कही जाती है जो इस प्रकार है-

त्रिपुरा नामक राक्षस ने एक बार प्रयागराज मे एक लाख वर्ष तक तप किया जिससे देवता घबराये। उसका तप भ्रष्ट करने के लिए देवताओ ने अप्सराओं को भेजा, किंतु तब भी जब वह विचलित नही हुआ तो ब्रह्माजी को जाना पडा। ब्रह्माजी से उसने देवताओं से भी पराजित न होने का वर माग लिया और देवताओ को सताने लगा। एक बार उसने कैलाश पर आक्रमण कर दिया जिससे दु खी होकर शिवजी ने ब्रह्मा और विष्णु की सहायता लेकर उसका वध कर दिया। तभी से इसे "त्रिपुरोत्सव" भी कहते है।[2]

मान्यता है कि इस दिन समुद्र चन्द्रमा से अमृत प्राप्त करने के लिए ऊपर उछाल मारता है। इसीलिए क्षीर सागर के दान का भी बड़ा महत्व बताया गया है। यह दान 24 अगुल के पात्र मे सोने या चादी की मछली छोडकर किया जाता है।

लोक मे इस दिन घर-घर खीर बनती है और उसे खुले आकाश मे रात भर रखा जाता है समझा जाता है कि चन्द्रमा से अमृत टपक कर इसमे पडेगा और जब उसे खाया जायेगा तो अमरत्व प्राप्त होगा।

कुम्भ :

कुम्भ, महाकुम्भ और कुभी इसके तीन रूप है। कुम्भ प्रत्येक वर्ष, अर्द्धकुम्भ छ वर्ष पर, महाकुम्भ बारह वर्ष पर मनाया जाता है। कुम्भ के चार स्थल है -(1) हरिद्वार - जब कुम्भ राशि का बृहस्पति होता है और मेष मे सूर्य सक्रांति का योग बैठता है तो मनाया जाता है। यह स्थिति मेष संक्राति को अर्थात् 13-14 अप्रैल से 14 मई तक होती है। (2) प्रयाग-माघी अमावस्या को बृहस्पति मेष राशि मे होते है, तो लगता है। (3) उज्जैन-बैशाखी पूर्णिमा के दिन जब बृहस्पति सिह राशि मे होते है,

1 हिन्दुओ के व्रत और त्योहार कुवर कन्हैया जू. पृ. - 135

2 वही पृ. - 135



तो लगता है। (4) नासिक- जब सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति तीनो सिंह राशि मे होते है, तो लगता है। स्कन्ध पुराण, वायु पुराण और विष्णु पुराणो में इसका उल्लेख हुआ है। कुम्भ को महापर्व कहा गया है इसलिए इस अवसर पर उक्त तीर्थों मे जाकर कल्पवास (एक माह) करने, दान-पुण्य, गगा-स्नान त्रिवेणी (प्रयाग) स्नान, भजन, पूजन, दर्शन का बहुत फल बताया गया है। इस सम्बन्ध मे एक पौराणिक कथा इस प्रकार कही-सुनी जाती है।

देवता तथा दानवो द्वारा सयुक्त रूप से समुद्र-मथन से जो चौदह रत्न निकले, उनमे से एक अमृत-घट भी था जिसे देवताओ के इशारे पर इन्द्रपुत्र जयन्त ने चुरा लिया, जिसे शुक्राचार्य ने देख लिया और जिसके लिए देवताओ और दानवो मे भयकर युद्ध हुआ। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर उस अमृत को देवताओ को पिलाकर अमर कर दिया। पिलाते समय उसकी कुछ बूदे पृथ्वी पर गिरी जिनमे ये ही चार स्थान थे। अमृत गिरने के कारण ये कालान्तर मे महातीर्थ बन गये जहा स्नान-दान का अद्यावधि महत्व बना हुआ है।

देवासुर सग्राम के मध्य आकाशीय ग्रह उस कुंभ की रक्षा करते रहे। चन्द्रमा ने अमृत गिरने से बचाया। सूर्य ने घडे को फूटने से बचाया, बृहस्पति ने दैत्यो द्वारा चाटने से और शनि ने कही अकेले जयन्त ही न पी जाय, इससे कुम्भ को बचा लिया। तात्पर्य यह कि ये सभी ग्रह देवताओं और मानवो के लिए कल्याणकारी है जिनकी आराधना की परपरा शास्त्रानुमोदित है। सूर्य तेजस्विता-ऊर्जा के, चन्द्रमा सोम शीतलता, अमृतत्व के, बृहस्पति बृद्धि-ज्ञान के और शनि अनिष्ट-निवारण के देवता अथवा ग्रह है। माना जाता है कि चन्द्रमा से अमृत टपकता है। इसीलिए पूर्णिमा के दिन समुद्र उछाल मारता है - अमृत के लिए। लोक मे पूर्णिमा के दिन खीर बनाकर चन्द्र प्रकाश में रखकर खाने का विधान है। पुराणो मे बृहस्पति को ज्ञान का, सूर्य को आत्मा का और चन्द्रमा को मन का स्थान या प्रतीक माना गया है।[1]

तात्पर्य यह कि कुम्भ भारतीय महापर्व है, जिसको ज्योतिषीय, शास्त्रीय, लौकिक मान्यता प्राप्त है। गगा-जल मे अमृत तत्व निहित बताया गया है अत इस पर्व पर गगा अथवा अन्य समुद्र, तालाब मे स्नान करना शुभ, मगलमय, पवित्र और पुण्यकर माना गया है। महाकुम्भ पर इन तीर्थों म इतनी भीड़ एकत्र हो जाती है कि कदाचित बहुत से लोग मर भी जाते हैं। इसलिए सरकार तथा स्वयंसेवी सगठनो को बडी तैयारी करनी पडती है।

1 कुम्भ महापर्व आलकारिक कथानक - भास्करानंद लोहनी
"आज सायं समाचार (सा वि) 7 अप्रैल, 1974 पृ. - 12



गंगा-दशहरा :

गगा स्वय मे एक सस्कृति है। उसे गगा माता के नाम से सम्बोधित किया जाता है, क्योकि वह अमृतत्व जल का दुग्धवत् वात्सल्य भाव से पान कराती है। उसके बारे मे "यावज्जाह्नवी तावद् भारतम्" कहा गया है। अर्थात् जब तक गगा है, तब तक भारत है। शास्त्रो मे नदियो को विश्व की मातृशक्ति के रूप मे देखा गया है-

विश्वस्य मातरा सर्वा जगत्पाय हरा. स्मृता ।[1]

गंगा उनमे अप्रतिम है। ऋग्वेद के एक सूत्र से लगता है कि हमारे ऋषियो को बहुत पहले गगा के महत्व की जानकारी हो गयी थी-

"इम मे गगे यमुने सरस्वती"[2]

इसी कारण तब से अब तक गगा का महत्व बढता ही जा रहा है। गगा पतितपावनी है, मोक्षदायिनी है, उसने सगर के पुत्रो सहित न जाने कितनो का उद्धार किया है। वह जीते जी अमृत-पान कराती है। मरने के बाद भी जब तक व्यक्ति की हड्डी गगा मे रहती है, तब तक वह स्वर्ग मे निवास करता है। इसी कारण गगा-तट पर शवदाह करके अस्थि-विसर्जन की शाश्वत् परपरा भी रही है। आकाश-गगा को विष्णु के चरण-कमल से निकला हुआ बताया गया है जो मेरु पर्वत के ऊपर गिरती है जहां से चार दिशाओं में चतुर्धा विभक्त होकर चक्ष, भद्रा, सीता और अलकनदा नाम भेदो से केतुमाल, उत्तर कुरू, भद्राश्व और भारत नाम के वर्षों मे प्रवाहित होती हुई इनके पास समुद्रो मे मिल जाती है।[3] गगा को शिव की जटा मे निवास करने वाली कहा गया है-

"जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता,

प्रकट भयी शिव सीस धरी।"

-------तुलसी।

गगा का वर्णन प्राय. सभी धर्मग्रंथों मे किया गया है। कवियो ने गगा का वर्णन करके अपनी वाणी-लेखनी की सार्थकता सिद्ध की है। गगा नाम उच्चारण करने मात्र से पाप दूर हो जाते है। गगा-जल मे स्नान, गगा-जल का पान, गगा-जल का स्पर्श, सब पुण्य कारक है। इसीलिए गगा

1. वायु 45/108
2. ऋग्वेद 10/7515
3. भा. 5/17/2, 5



को साधारण नदी नही कहा गया है। भागीरथी गगा का आविर्भाव आज से साढे सात हजार वर्ष पूर्व हुआ था, ऐसा माना जाता है। तभी से अद्यावधि अभिजात्य और लोक-साहित्य में भी गगा का महत्व सर्वत्र वर्णित है। भारतीय परपरा रही है कि किसी के महत्व को शाश्वत् बनाने के लिए उसे धार्मिक विश्वास, पर्व, त्यौहार से जोड दिया जाता है। गगा को भी गंगा-दशहरा से जोडा गया है। यह पर्व ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष दशमी को देश भर मे, विशेष रूप से काशी और विन्ध्य-क्षेत्र मे धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन व्रतोपवास रखा जाता है। दान दिया जाता है। गगा-स्नान, गगा-जल का पान किया जाता है। इस दिन प्रात काल स्नानादि करके बालिकाएं गुडिया-गुड्डे का विवाह करके उसे नदी मे प्रवाहित करती है। इलायची, गुड-चना का प्रसाद चढाया जाता है और उसे श्रद्धया ग्रहण किया जाता है। इस दिन चने के दाल की भरी पूडी (दलघुसेडी) और गूरम (गुड और कच्चे आम का पकाया हुआ रस) विशेष रूप से खाया जाता है। स्त्रिया गीत गाती हुई गगा अथवा अन्य नदियो के तट पर जाती हैं। वहा स्नान करती है। गगाजी की पूजा करती हैं। काशी मे दसाश्वमेध घाट पर गगा जी की मूर्ति स्थापित है जहा भारी भीड़ एकत्र हो जाती है। गंगा जिस-जिस प्रदेश स्थान से बही है, वह स्थल एक तीर्थ बन गया है। अलकनदा, हरिद्वार, ऋषिकेश से लेकर प्रयाग, मिर्जापुर, काशी, गाजीपुर, बलिया होते हुए कलकत्ता से आगे गंगा सागर तक जहा गगा सागर की धारा में समाहित हुई है, तक के सभी नगर-"तीर्थ स्थल बन गये है। इन सभी स्थलो से सम्बन्धित पौराणिक कथाए जुडी हुई है। इन स्थलो पर ऋषियो, महर्षियों, देवी-देवताओ, साधु-सन्तो का सदा आगमन होता रहा है। यहां अनेक मेले-ठेले आयोजित होते रहते है। भक्तकवि रसखान ने गगा के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा है-

वैदकी औषधि खाई कछू,
न करै कछु संयम री सुनि मोसे।
तो जलपानि कियो "रसखानि"
सजीवनि जानि लियो सुख तोसे,
एरी सुधामयी भागीरथी,
सब पथ्य कुपथ्य बनै तोहि पोसें।।
आक धतूर चबात फिरै,
विष खात फिरै सिव तोरे भरोसे।।



गगा लोक की देवी है। वह सब कुछ देने वाली है। इसी कारण कोटि-कोटि जनता उसकी पूजा-अर्चना के लिए तैयार रहती है। लोकगीतो मे गंगा की सर्वत्र चर्चा हुई है। यहा कुछ पक्तिया प्रस्तुत है-

गगा मइया कोखिया के भरलू,
बिटिया एक देहलू न हो।
गगा सुरूजू ले देई देतू बरवा,
चनरमा मोरी बिटिया न हो।
गंगा मलवा मै तोहके चढउतिउ,
बधइया बजउतिउ न हो।
गगा गोडवा पर धरी हम मथवा,
अरज मोरी पुरवहु न हो।।[1]

गगावतरण की कथा "स्कन्दपुराण" तथा वाल्मीकि रामायण मे अकित है। ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को यदि सोमवार पड जाय और हस्त नक्षत्र हो तो यह तिथि सब पापो को हरने वाली होती है।[2] इस स्नान-पर्व के महत्व को प्रतिपादित करने वाली कुछ पौराणिक कथाए भी प्रचलित है।[3]

गणेशोत्सव :

शुभ के लिए गणेश की पूजा का विधान हिन्दू-धर्म और सस्कृति मे अनादिकालीन है। किसी कार्य को आरभ करने के लिए "श्री गणेश करना" एक मुहावरा बन गया है। गणश-सा पुत्र प्राप्त होने के लिए स्त्रियां गणेश-पूजन करती है। प्रत्येक देवता के पूजन मे, शिलान्यास, मूर्ति-स्थापना, भवन अथवा मंदिर-निर्माण या अन्य किसी भी प्रकार के शुभारभ मे गणेश की पूजा अथवा स्थापना पहले की जाती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गणेश भारतीय संस्कृति में मूल और प्रथम देवता है। वैसे तो उनका पूजन प्रतिदिन ही किया जाता है- श्री गणेशाय नम करके, किन्तु गणेश चतुर्थी (माघ शुक्लपक्ष) के दिन पूरे विधि-विधान के साथ प्राय हर हिन्दू-परिवार मे गणेश जी की पूजा विधिवत्

1. गगा गोडवा धरी हम मथवा लाल बहादुर सिह, "आज" साय समाचार 15 जून, 1975 पृ - 18
2 हिन्दुओं के व्रत और त्योहार कुवर कन्हैया जू पृ. - 61
3. दे. वहीं पृ. - 61



की जाती है। "वाराहपुराण" के अनुसार इसी तिथि को ऋषियो और देवताओ ने मिलकर गणेश की स्तुति विनायक रूप मे की थी-

श्री गणेश की पूजा वैसे तो भारत भर मे, जहा हिन्दू समुदाय है, विदेशो मे भी, धूमधाम से की जाती है किन्तु महाराष्ट्र और उत्तर भारत के बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश मे विशेष समारोहपूर्वक सम्पन्न होती है। स्त्रिया व्रत रहती है। उस दिन चार प्रहर रात गये, जैसे ही चन्द्र-दर्शन होता है, किसी खुले स्थान अथवा आगन में चौके पूर कर गोबर से गणेश का आकार बनाकर, फल, मिष्ठान्न, फूल, अक्षत, रोली, सिदूर आदि चढाकर समूह मे पूजन करती और लोकगीत गाती अथवा कहानिया कहती है। महाराष्ट्र मे बच्चे मिलकर गणेश जी की मूर्ति स्थापित करते है। वे काष्ठ-दण्ड बजाकर पूजा करते है। उनके मा-बाप उनके शिक्षको को दक्षिणा देते है, किंतु भोजपुरी भाषी जनपदो में काली तिल और गुड से गणेश की पूजा की जाती है। इस दिन का चाद देखना अशुभ माना जाता है। एक कहावत् भी है-

जे देखै चउथ क चन्दा,
ओके लागे कलक क फदा।

यदि किसी ने देख ही लिया तो उससे दोष निवारण के लिए बच्चे लोगो की छतो, खपरैल के मकानो पर ककडी या मिट्टी का ढेला फेकते है। मान्यता है कि ऐसा करने से घर की मालकिन गालिया देती है, जिससे दोष का निवारण हो जाता है। गणेश-पूजन के बारे मे और भी शास्त्र-सम्मत तथ्य है-

(1) जो तिल से गणेश की पूजा करता है, वह स्वय पूज्य हो जाता है।

(2) गणेश ब्रह्म स्वरूप है।

(3) गणेश आत्मरूप तत्व, माया रहित, सोहम बोध स्वरूप, चित्र के परे तथा बिना आदि, मध्य, अत के देवता है।

(4) गणेश के पचास नाम है।

(5) पुष्टि, शाति, सरस्वती, स्वाहा, मेधा तथा काति आदि उनकी शक्तिया हैं।

(6) शिवपुराण के अनुसार गणेश का जन्म पार्वती के शरीर की मैल से, ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार पार्वती के द्वारा श्री कृष्ण व्रत करने पर, स्कन्द तथा लिगपुराण के अनुसार पार्वती के गर्भ से और वाराहपुराण के अनुसार शिव की हसी से हुआ।



(7) ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्ड्यूक्य, ऐतरेय, तैतरीय, छान्दोग्य तथा वृहदारण्यक उपनिषदो मे गणेश का उल्लेख नही हुआ है।[1]

गणेश का रूप अन्य देवताओ से भिन्न है। उनका मुख हाथी की सूड की तरह है। उनका वाहन चूहा है। गणेश लोक-मगल के लोक-रक्षक देवता है। उनकी पूजा इस श्लोक द्वारा की जाती है-

"गजानन भूतगणादि सेवितम्

कपित्थ जम्बूफल चारु भक्षणम्।

उमासुतं शोक विनाशकारक,

नमामि विध्नेश्वर पाद पकजम्।।"

लोक मे मूर्ख के लिए 'गोबर गणेश' होना कहा जाता है, जबकि शास्त्र मे इन्हे 'बुद्धिराशि" कहा गया इसके पीछे क्या मूल भावना है, बताना कठिन है।

"शिवपुराण" की एक कथा के अनुसार पार्वती जी एक बार अपने मैल से पुत्र को जन्म देकर उसे द्वार-रक्षक के रूप मे नियुक्त कर स्वय स्नान करने चली गयी। इसी बीच शकर जी आ गये। गणेश ने उन्हे घर के भीतर नही जाने दिया जिसके फलस्वरूप दोनो मे युद्ध छिड गया। गणेश का सिर फट गया। लौटकर पार्वती जी ने उस रूप को देखा, शिव के प्रति क्षोभ व्यक्त किया जिसके फलस्वरूप देवो और दानवो मे युद्ध छिड़ गया। देवगण पराजित हुए। तब विष्णु ने पार्वती को समझाकर इस शर्त पर शात किया कि उस बालक को जिला दिया जाय। अत इस बालक के कटे हुए सिर के स्थान पर एक हाथी का सिर लगा दिया और वह बालक जी उठा जिसे गणेश के नाम से जाना जाने लगा। इनकी काति की उपमा कोटि सूर्य-सम की गयी है-

"वक्रतुण्ड महाकाय, कोटि सूर्य सम प्रभ।

प्रतिरक्षां कुरुमेदेव, सर्वकालेषु सर्वदा।।"

गोवर्द्धन-पूजा .

"गोवर्द्धन" शब्द बहुत पौराणिक महत्व का है। भगवान श्रीकृष्ण ने इन्द्र भगवान के कुपित होने पर प्रलयकारी वृष्टि से गोकुलवासियो तथा गौवो की रक्षा के लिए गोवर्द्धन पर्वत को अपनी कनिष्ठिका

1 गणेश पूजन की एतिहासिकता डॉ. वशिष्ठ नारायण सिन्हा "आज" विशेषाक, सितम्बर, 1968, पृ. - 13



पर उठा लिया था जिससे सबके प्राणो की रक्षा हो सकी थी। तभी से गोवर्द्धन-पूजा का पर्व हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इस दिन पहाड की पूजा गोवर्द्धन का प्रतीक मानकर की जाती है। छप्पन भोग (पकवान) से पहाड तैयार किया जाता है जिसे चढाकर भक्तगण प्रसाद ग्रहण करते है।

आज के सदर्भ मे पर्यावरण-पर्व के रूप मे इस पर्व का महत्व और भी बढ जाता है। पहाडों, वृक्षो तथा पशुओ की पूजा की परपरा बहुत पुरानी है और ये तीनो मानव-जीवन के लिए अनिवार्य रहे है, आज भी है। हमारे प्राय सभी पर्व स्वास्थ्य के लगायत भी है।

गोवर्द्धन का शाब्दिक अर्थ है- गो-वृद्धि। अर्थात् गायो की सख्यावृद्धि। गो-सेवा करके राजा दिलीप ने मनोवाछित फल प्राप्त किया था। गो-माता है। वह मातृवत् हमारा पालन करती है। वह धरती को अमृत-दूध से हमे जीवन-दान देती है। इसी कारण हम उसकी पूजा करते है। गोवर्द्धन के दिन भी गावो मे सभी पशुओ को किसी स्थान पर एकत्र किया जाता है। वहां डाल लगायी जाती है। अर्थात् उन्हे लडाया जाता है। शेर की खाल में भूसा भर कर पशुओ के सामने लाया जाता है जिसे देखकर पशु भडकते-भागते है। उन्हे खली, भूसा खिलाया जाता है। उनकी सीगों मे तेल लगाया जाता है। अनेक स्थानों पर पशु-प्रदर्शनी लगायी जाती है। उनका क्रय-विक्रय किया जाता है। मेले लगाये जाते है। बलिया मे लगने वाला ददरी का पशु-मेला विश्व प्रसिद्ध है। बबुरी (वाराणसी) का पशु मेला भी प्रसिद्व है।

गोवर्द्धन-पूजा के दिन दूध नही बेचा जाता, अपितु कराह लगाया जाता है। कराह आभीर जाति के बाबा है। ये बाबा जिसको इष्ट हो जाते है, उसके ऊपर आग-पानी का प्रभाव नही पडता। ये खौलते हुए दूध मे स्नान कर सकते है। इसी कारण भारी मात्रा मे दूध एकत्र करके उससे खीर पकायी जाती है। खीर का प्रसाद सभी लोग ग्रहण करते है।

डाला छठ का पर्व तथा कार्तिक महोत्सव :

डाला छठ कार्तिक माह के शुक्लपक्ष मे छठ को मनायी जाती है। यह स्त्रियो का मेला हे जिसे सूर्यषष्ठी भी कहते है। इसका 'डाला' लोक नाम है, क्योकि इस दिन स्त्रिया अपने सिर पर डाला रखकर किसी समीप की नदी अथवा तालाब मे स्नान करने जाती है। वहा वे उगते सूर्यदेव की पूजा जल, पुष्प, प्रसाद आदि चढाकर करती हैं। सम्भवत, सूर्य की उष्मा को कम करने के उद्देश्य से इस व्रतोत्सव का आरभ किया गया होगा। आज जो ओजोन परत के क्षरण की बात की जा रही



है उसकी सुरक्षा के ख्याल से हमारे ऋषियो-महर्षियो ने इस परपरा की शुरूआत दूरदर्शी भावना से की होगी।

बहुत सी स्त्रिया पूरा कार्तिक माह प्रातः कालीन स्नान करती है। वे नित्य तुलसी-सूर्य की पूजा करती है। पेदल ही नित्य यात्रा करके देव-स्थान या नदी-तट तक जाती हैं। इनके गीत की कुछ पक्तिया है-

काचहि बास के बहरखा-दउरा लचकत जाय।

ऊगी न सूरज देव, लीही न अरधिया।।

इस पर्व मे प्रात'काल से दिन भर उपवास रहकर व्रतधारी स्त्रियां शाम को खीर-रोटी का प्रसाद ग्रहण करती हैं और फिर 35 घटे तक उपवास रहकर घाटो पर पहला अर्घ्य शाम को अस्त होते सूर्य को तथा दूसरा अर्घ्य दूसरे दिन प्रात उगते सूर्य को देती है। सूर्य उदय की प्रतीक्षा मे पहले ही से कमर भर जल में खडी रहती है। वे सिन्दूर माग से माथ पर तथा नाक पर भी लगा लेती है। इस व्रत का उद्देश्य यह है कि उन्हे सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र पैदा हो।

छठ पूजन की परपरा बिहार मे अधिक है। वहा छठ देवी के अनेक मदिर बने हुए है। यह परंपरा उत्तर प्रदेश के भोजपुरी भाषी जनपद वाराणसी, सोनभद्र, बलिया, गाजीपुर, बस्ती, देवरिया, सिद्धार्थनगर अर्थात् बिहार के सीमावर्ती जनपदो में अधिक लोकप्रिय होती जा रही है।

सूर्यव्रत का ऐतिहासिक तथा सास्कृतिक दोनो महत्व है। सूर्य वैदिक देवता है तथा सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी की पूजा आदिम मानव भी शक्ति के रूप मे उत्सुकतापूर्वक करता रहा है। गुहाचित्रो मे सूर्य-आराधना के दृश्य प्राप्त है। आदिवासी सूर्य की पूजा करते हैं। तुलसी छठ पूजन के अवसर पर विष्णु भगवान की भव्य बारात सुसज्जित बजडो पर निकाली जाती है। बैण्ड बाजों, संकीर्तन मण्डलियों एवं आतिशबाजी के कार्यक्रमो के साथ झुण्डों मे गाती-बजाती महिलाओ का दल जब शोभायात्रा के लिए निकलता है तो मेले का रूप धारण कर लेता है। विष्णु भगवान की पालकी रथ के रूप में भक्तिने अपने कधों पर उठाती है। यह समारोह वाराणसी के पचगंगा घाट पर बड़े उत्साह से मनाया जाता है जिसमें रामानदाचार्य तक उपस्थित रहते है। यहा कन्याओ द्वारा परपरागत ढग से परछण तथा आरती उतारने का आयोजन किया जाता है। बारातियो को पूजन की माला पहनाई जाती है। इस मेले में मध्य प्रदेश, पजाब, महाराष्ट्र, बिहार, अयोध्या, चित्रकूट, गुजरात आदि प्रदेशो के प्रतिनिधि भी सम्मिलित होते है।



ऋग्वेद मे सूर्य को साक्षात्कार ब्रह्मा कहा गया है। सूर्य की उपस्थिति मे ही ऑख कार्यशील रहती है-

मित्रस्याह चक्षुषा सर्वारिण भूतानि समीक्षामहे।" सूर्य का एक नाम "मित्र" इसीलिए है, क्योंकि वह सबका हितकारी है, सभी शुभ कार्यों के लिए उत्प्रेरक है।

दीपावली :

दीपावली अपने देश का एक महत्वपूर्ण त्यौहार है जो कार्तिक माह की अमावस्या को मनाया जाता है। यह त्यौहार भगवान श्रीराम के चौदह वर्ष के वनवास के उपरात अत्याचारी रावण को पराजित कर अयोध्या पुनरागमन के उपलक्ष्य मे मनाया जाता है। उनके आने पर दीपमालाएं जलायी गयी थी, अत उस दिन परपरया हर घर, हर देवस्थान, हर दुकान पर दीपक जलाये जाते है। पटाखे बजाये जाते है।

इस दिन लक्ष्मी-गणेश की पूजा, विशेष रूप से व्यवसायी वर्ग के लोग स्वय या ब्राह्मण पुरोहित द्वारा करते-कराते है। इसी दिन वर्ष भर के आय-व्यय का लेखा-जोखा तैयार किया जाता है और बही-खाता बदल दिया जाता है।

दीपावली के दिन जुआ खेलने की परपरा भी रही है। इस गलत परपरा के कारण तमाम लोग निर्धन हो जाते है। यदा-कदा वे जगह-जमीन, पशुधन और यहा तक कि अपनी पत्नी और उसकी कोख तक हार जाते है। यह इस त्यौहार का दुर्बल पक्ष है।

दीपावली के दिन रात मे लक्ष्मी-गणेश की पूजा की जाती है। लक्ष्मी धन-धान्य की देवी है। श्री-समृद्धिदात्री है। पुराणो मे श्री का आविर्भाव समुद्र-मथन से हुआ बताया गया है। अर्थात् चौदह रत्नो मे लक्ष्मी भी एक रत्न है। शतपथ ब्राह्मण मे श्री उत्पत्ति प्रजापति के अन्तस से मानी जाती है। ऋग्वेद मे श्री और लक्ष्मी को एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है। यजुर्वेद मे श्री और लक्ष्मी को विष्णु की दो पत्निया कहा गया है।

"श्रीश्चते लक्ष्मीश्चते सपत्नयो"

श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसाद समृद्धि की प्रतीक "श्री" अर्थात् लक्ष्मी-पूजा अपने राष्ट्र की सर्वाधिक प्राचीन सास्कृतिक परपरा है। ज्योतिपर्व दीपावली तो इसी के लिए प्रसिद्ध है।[1] आचार्य जी

1. *अखण्ड ज्योति अक्टूबर 1997, पृ. - 6*

12669



के अनुसार- "श्री शक्ति स्वरूपा है। प्रकारान्तर से यही श्री विद्या एव श्री मत्र का आधार है। इसकी आराधना और उपासना से लौकिक और पारलौकिक सुख, ऐश्वर्य और आनद प्राप्त होता है। यो तो इसकी नित्य अर्चना शुभ फलदायी है। पर ज्योतिपर्व दीपावली तो इसका महोत्सव है। यह इसके तत्वज्ञान को समझने और रहस्यमय उपलब्धियो को पाने का पर्व है। इस अवसर पर की गयी श्री उपासना जीवन मे सुख, समृद्धि एव सौंदर्य की निरतर अभिवृद्धि करने वाली होती है।[1]

इसी प्रकार गणेश की पूजा का विधान भी है जो शुभ, मगलदायक है। शुभ और लाभ दोनो गणेश और लक्ष्मी के प्रतीक है। इस दिन व्यापारी बही और द्वार पर स्वास्तिक चिन्ह बनाकर शुभ-लाभ लिखते है। गणेश का वाहन चूहा है तो लक्ष्मी का वाहन उल्लू है। ये दोनो जीव दया और पर्यावरण के प्रतीक है। गणेश तो आदि देव प्रथम पूज्य देवता है। 'लक्ष्मी पुराण' मे श्री के निवास का उल्लेख हुआ है। लक्ष्मी जी कहती है- जो मनुष्य मितभाषी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, शात कृतज्ञ जितेन्द्रिय और उदार है, उनके यहा मेरा निवास है। सवारी, कन्या, आभूषण, यज्ञ, जल से पूर्ण मेघ, भूले हुए कमल, शरद ऋतु के नक्षत्र, हाथी, गायो के रहने के स्थान, राजा, सिहासन, सज्जन पुरुष, विद्वान ब्राह्मण, क्षत्रिय, सेवा-परायण किसान के यहा लक्ष्मी विराजती है। अकर्मण्य, नास्तिक, कृतघ्न आचार-भ्रष्ट, नृशस, चोर, उद्धत, कायर, बुद्धिवीर्यहीन पुरुष इसके दुश्मन माने जाते है।[2]

दीप हमारी सनातन परपरा का मूक साक्षी है, वह जो कुछ बोलता है।' उसे हम नही समझ सकते, परन्तु ज्योति ही सब कुछ कह देती है। यज्ञ या वेदी पर दीप को प्रतिष्ठित कर देने के बाद इसमे यह शक्ति आती है कि यज्ञ का धूम और दीप का प्रकाश हमारा कल्याण करने को उद्यत है और हम मागलिकता से परिपूर्ण होते जा रहे हैं।

महालक्ष्मी-पूजन :

दीपावली के अवसर पर महालक्ष्मी के पूजन का अनुष्ठान भाद्रपद सुदी अष्टमी से आश्विन कृष्णाष्टमी तक चलता है। इस अवसर पर कच्चे धागे मे सोलह गाठे बाधी जाती है। उसकी पूजा होती है। स्त्रिया (सधवा) किसी तालाब, नदी मे जाकर चालीस लोटे जल से स्नान करके सोलह अजुलि जल सूर्यदेव को अर्पित करती है। गण्डे से लक्ष्मी जी का पूजन करती है और सोलह प्रकार

1 वही पृ. - 8

2 अखण्ड ज्योति अक्टूबर 1997 पृ - 7





का पकवान बनाया जाता है। हाथी की पूजा की जाती है और कहानी भी कही जाती है, जो इस प्रकार है-

एक राजा के दो रानियां थी। एक को कई पुत्र पैदा हुए, दूसरी को एक ही हुआ। लक्ष्मी पूजन के दिन हाथी बनाकर पूजने के लिए रानियो ने अपने पुत्रो को मिट्टी का लोदा लाने को कहा तो एक रानी के पुत्रो ने ढेर सा लोदा लाकर रख दिया, दूसरी का एक ही पुत्र एक लोदा लाया जिससे हाथी नही बनाया जा सका। इसका दु ख रानी को हुआ। रानी ने अपने दु ख को जताया, तब उसका पुत्र इन्द्रासन जाकर इन्द्र के हाथी ऐरावत को पकड लाया, तब प्रसन्नतापूर्वक उसकी मां ने उसकी पूजा की और कहा-

क्या करे किसी के सौ-साठ।

मेरा एक पुत्र पुजावे आस।।[1]

कहा भी गया है कि अनेक मूर्ख पुत्रों की अपेक्षा एक गुणी पुत्र का होना अच्छा है-

"वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि।"

धनतेरस :

धनतेरस कार्तिक कृष्णपक्ष की त्रयोदशी को मनाया जाता है। यह पर्व दीपावली के उपलक्ष्य मे पूरे देश भर मे हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इस दिन धन-धान्य के आगमन का उत्सव मनाया जाता है। व्यापारी तथा कायस्थ कलम की पूजा करते है। वही और लोग लक्ष्मी-गणेश खरीदते है। बर्तन खरीदना शुभ माना जाता है। अत· बर्तन, आभूषण, लाई-चना, धान का लावा, चूडा, ककनी आदि से दुकाने सज जाती है। भारी सख्या मे नर-नारी सामान खरीदने के लिए बाहर निकलते है। दीपमालाएं सजायी जाती है। अत कहीं-कही इसी को छोटकी दीपावली भी कहते है।

धनतेरस का पर्व धन्वन्तरि-जयन्ती के रूप मे भी मनाया जाता है। धन्वन्तरि ऋषि विष्णु के अवतार थे। ये दीर्घतम के एक पुत्र थे, जो आयुर्वेद के जनक तथा केतुमान के पिता थे। पुराणो के अनुसार वे अमृत-मथन में निकले चौदह रत्नो मे से एक थे।[2]

भारतीय त्यौहार धर्म के अतिरिक्त स्वास्थ्य के लिए भी है, अत दीर्घायुष्य के लिए धनतेरस के त्यौहार का बडा महत्व है।

1. हिन्दुओं के व्रत और त्यौहार · कुवर कन्हैया जू - पृ. - 108

2. हिन्दी साहित्य कोश भाग-दो, धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल, वाराणसी, पृ - 254



नागपचमी :

भारतीय जीवन और सरकृति मे पशु-पक्षियो, जीव-जन्तुओ, कीडे-मकोडो को सापेक्षता के साथ ग्रहण किया गया है। उनमे से अनेक के देवी-देवताओ के सग पूजा का भी धार्मिक विधान है। "नागदेवता" उन्ही मे से एक है जो शिव के गले के हार है और जिनके फन पर यह पृथ्वीमाता टिकी हुई है। इतना ही नही, लोको मे एक नाग लोक भी है। श्रीकृष्ण ने गीता मे वासुकि नाग को अपना ही स्वरूप बताया है-

सर्पाणामस्मि वासुकि

हमारे यहा, एक प्रकार से नागपचमी से ही त्यौहारो की श्रृखला प्रारभ होती है। श्रावण शुक्ल पचमी के दिन शास्त्रकारों ने नागो के पूजन और उनकी प्रसन्नता के लिए वन मे दुग्धादि पदार्थ विसर्जित करने का विधान किया है। सृष्टि के आदि से ही नागपूजा की परपरा विश्व के अनेक देशो में रही है। सर्पों से जुडी अनेक कथाए लोक-विश्रुत हैं।

भोजपुरी भाषी जनपदो मे भी नाग-पूजा की सर्वत्र परपरा रही है। यहा अनेक स्थलो पर नागकुण्ड है जहा नागपचमी के दिन मेलों का आयोजन किया जाता है। इसी दिन कुश्ती-दगल आयोजित होते हैं। प्रत्येक घर मे बडी-बडा, चावल, दाल, करी आदि बनाये खाये जाते हैं। अपने-अपने घरों को गाय के गोबर से गोठा जाता है। भित्तियो पर उगलियो के निशान लगाये जाते हैं। उन पर नाग देवता के चित्र बनाए जाते हैं। "वाराहपुराण" मे वर्णन आया है कि इसी दिन सृजन-शक्ति के अधिष्ठाता ब्रह्मा ने शेषनाग को अपने प्रसाद से विभूषित किया था और इसी दिन जनता ने शेषनाग द्वारा पृथ्वी का भार धारण किये जाने के कारण उनका पूजन प्रारभ किया था। श्रीकृष्ण ने भी इसी दिन कालिय-मर्दन किया था और अपने चरण की छपा लगाकर उसे गरुण के भय से मुक्त किया था।

भोजपुरी भाषी जनपदो मे स्त्रिया नागो का स्वाग करती है, नाग की कथाएं कहती है, गीत भी गाती हैं। दूध-लावा का प्रसाद वितरित करती हैं। यहा ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक गाव में एक डिहवार सांप होता है जो डीह पर बसे गांव और उसके निवासियो की रक्षा करता रहता है। रुष्ट होने पर ही वह किसी को काटता है। इसीलिए वर्ष मे एक बार उसकी पूजा अनिवार्य है- नागपचमी के दिन। इस दिन नाग का दर्शन भी शुभ और कल्याणकारी माना जाता है। शिलान्यास के स्थल पर सोने, चांदी, ताबे का नाग बनाकर पूजा करके नीव मे न्यस्त किया जाता है। उससे आवासीय



मकान मे सर्प-बाधा समाप्त हो जाती है। "अग्निपुराण" के अनुसार पाच फन वाले नाग की पूजा से आयु, विद्या, कीर्ति, लक्ष्मी और अभय प्राप्त होता है-

ऐसावतो धृतराष्ट्र कर्कोटिक धनन्जया।

एते प्रयच्छन्ति अभयायुर्विद्या यश श्रियम्।।

हमारी मान्यता है कि ये विषधर जीव-जन्तु भी अकारण किसी को काटते नही है, इसलिए इन्हे मारना या छेडना नही चाहिए। श्री मद्भागवत् मे भी ऐसा आया है कि सभी जीव अपने-अपने कर्मानुसार गति को पाते है, कोई किसी को सुख-दु ख नही देता है, इसलिए उन्हे मारना नहीं चाहिए-

जीवित मरण जन्तोर्गति स्नेनैव कर्मणा

राज स्ततेऽन्य नान्यस्य प्रदाता सुख दु ख भो ।।[1]

नागो मे अनन्त, वासुकी-शेष, पदन, कवल, ककेटिक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शखपाल, कालिका, तक्षक और पिगल बारह नाग प्रसिद्ध है। इनमे से एक-एक नाग की एक-एक माह मे पूजा करनी चाहिए।[2] साप को कभी मारना नही चाहिए। इस सबध मे एक कथा भी कही जाती है-

एक किसान अपने परिवार समेत मणिपुर नामक नगर मे रहता था। उसके दो लडके और एक कन्या थी। एक दिन जब वह अपने खेत मे हल जोत रहा था, उसके हल की फन मे बिंध कर साप के तीन बच्चे मर गये। बच्चो की माता नागिन ने पहले तो बहुत विलाप किया, फिर अपने बच्चो को मारने वाले से बदला लेने का सकल्प किया। रात्रि के समय नागिन ने किसान, उसकी स्त्री और दोनो बच्चो को डस लिया, जिससे वे चारो मर गये। दूसरे दिन वह नागिन जब कन्या को डसने के लिए गयी तब कन्या ने डर कर उसके सामने दूध का कटोरा रख दिया और क्षमा-प्रार्थना करने लगी। वह दिन नागपचमी का था, इसलिए नागिन ने प्रसन्न होकर उस बालिका से वर मागने को कहा। लडकी ने यह वर मागा कि उसके माता-पिता और दोनो भाई पुन जीवित हो जाये और जो आज के दिन नागो की पूजा करे, उसे कभी नाग के डसने की बाधा न हो। नागिन लडकी को वरदान देकर चली गयी। उसी दिन से नागपचमी के दिन नाग की पूजा चल पडी।

1 श्रीमद्भागवत् स्क 12 अ. 6 श्लोक - 25
2 हिन्दुओ के व्रत और त्यौहार कुवर कन्हैया जू पृ. - 69



पितृ-पूजा

हमारा देश पुनर्जन्म मे विश्वास करता है, इसीलिए हम प्रार्थना करते है कि इस जन्म मे जो माता-पिता हमे प्राप्त हुए है वे अगले जन्म मे भी प्राप्त हो। कितने सात्विक और उदार विचार है ये कि चाहे जैसे भी माता-पिता रहे हो, हम उन्ही को अगले जन्म मे भी पाने अथवा उन्हे मोक्ष दिलाने की कामना करते है। आदिवासियो मे गोदना की परपरा है जिसका तात्पर्य है कि उन्हे अगले जन्म मे भी वही पति प्राप्त हो। इसी कारण भारतीय धर्म मे मृतक की पूजा भी शुभ मानी जाती है और इसके लिए वर्ष मे क्वार माह का प्रथम पक्ष पितृ-पूजा के लिए निर्धारित है। जिस तिथि को किसी प्राणी की मृत्यु हो जाती है, उसी तिथि को प्रति वर्ष पितृपक्ष मे पिण्डदान की प्राचीन परपरा है। पुत्र अपने पितरो के लिए जौ, तिल, चावल, जल का दान करता है। उस तिथि अथवा पूरे पक्ष तक दाढी-बाल नही बनवाता। पितृ-विसर्जन के दिन ब्राह्मण को भोजन कराता है। किन्तु जब वह अपने पितरो को निकाली करके गया पहुचा देता है तो ये क्रियाए प्राय नही करता। माना जाता है कि उसके पितृगण देवलोक पहुचकर मोक्ष प्राप्त कर चुके है।

पितृ-पक्ष पर गया मे भारी भीड एकत्र होती है। पितृ-भक्तगण वहा पहुचकर पितरो के नाम पर पिण्डदान करते, दान-दक्षिणा करते और बाल मुडवा कर शुद्ध होते है। यह अपने पितरो को याद करने का एक त्यौहार है।

भोजपुरी भाषी जनपदों मे काशी, मिर्जापुर (शिवपुर) मे यह परपरा अधिक मान्य है। ऐसा माना जाता है कि श्री रामचन्द्र जी ने पिता दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर काशी और प्रयाग के बीच विन्ध्याचल के समीप रामगया घाट पर (गगा जी के किनारे) पिण्डदान किया था। तभी से आज तक पितृपक्ष में यहा भारी भीड एकत्र होती है। लोगो का विश्वास है कि बिना रामगया मे पिण्डदान किये, सीधे गया मे पितृगण पिण्डदान स्वीकार नही करते।

पितृ-पूजा की परपरा बहुत पुरानी है। यह इसी से स्पष्ट है कि राजा दशरथ की मृत्यु होने पर भगवान राम ने रामगया अथवा गया मे पारपरिक रूप से पिण्डदान किया था। एक उल्लेख के अनुसार भारत भर मे ऐसे इक्यावन तीर्थ हैं जहा पिण्डदान किया जाता है। ये तीर्थ भारत, बगला देश तथा पाकिस्तान के नगरों, ग्रामो, नदियों के तटों, समुद्र के किनारो तथा पर्वत के शिखरो पर बने हुए है तथा आज भी गया, प्रयाग, काशी, कुरुक्षेत्र, नर्मदा, श्रीपर्वत, प्रभास, शालिग्राम तीर्थ (गण्डकी) एव बद्रीनाथ मे कोटि-कोटि भारतीय श्रद्धापूर्वक पितरो का श्राद्ध, पूजन तथा उनके निमित्त दान करते



है। इस पितृ-पूजा का व्यक्तिगत, धार्मिक, सामाजिक विशेष महत्व तो है ही, इससे राष्ट्रीय सदाचार की नीव भी सुदृढ होती है।"[1]

पितृ-पूजा वैदिकी है। उपनिषदो, पुराणो तथा प्राचीन धर्मग्रथो, काव्यों मे भी इसका महत्व बताया गया है। ऐसी मान्यता है कि धर्मयुक्त सदाचरण में रहने तथा कार्य करने वालों को यमराज सुख के देश मे ले जाते है, इसके विपरीत आचरण करने वालो को पुन. कर्मफल भोगना पडता है और उनका पुनर्जन्म होता है। मृत पितरो को सम्बोधित करके कहा गया है-

"सगच्छत्वापितृमि सयमेनेष्टापूर्ते न परमेव्योमन।

हित्वापावय पुनरस्तमेहि सगच्छत्वतन्वा सुवर्चा।।[1]"

प्रत्येक मनुष्य पर देव, ऋषि पितृ ऋण होते है। प्रत्येक मानव का उनसे मुक्त होना अनिवार्य है। एतदर्थ हमारे यहा अनुष्ठानों का विधान है तथा माना जाता है कि यज्ञो द्वारा देवऋण, अध्यापन से ऋषिऋण तथा श्राद्ध तर्पण से पितृऋण से मुक्ति मिलती है। इसीलिए सन्ध्या वन्दन के साथ ही पितृ तर्पण भी नित्य करना चाहिए। शुभ कार्यों मे भी इनका श्राद्ध एव तर्पण किया जाता है। माता-पिता के मृत होने पर 'गरुण पुराण' सुनने का विधान है। "गरूणपुराण" में लिखा है कि पुत्रो द्वारा श्राद्ध मे विधिपूर्वक प्रदत्त नाना प्रकार के भक्ष्य या भोज्य व्यजन पितरो को प्राप्त है-

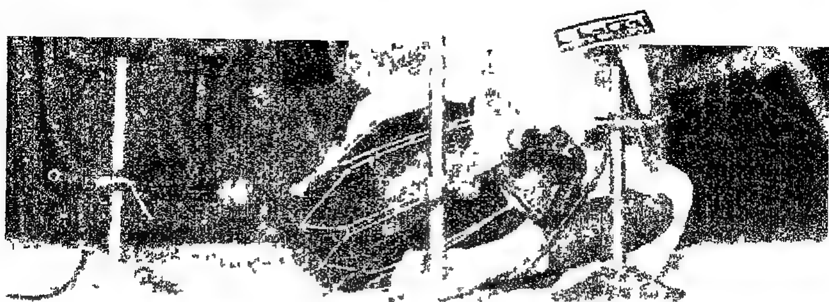
"व्यजनानि विचित्राणि भक्ष्य भोज्यानियानिच।

विविधा ददते पुत्रै पित्रे तदुपतिष्ठति।।[2]"

भैयादूज :

लोक में भाई-बहन के प्रेम को अप्रतिम बनाने के लिए रक्षाबधन और भैयादूज दो पर्व बनाये गये है। रक्षाबधन श्रावणी पूर्णिमा को होता है, तो भैयादूज चैत्र मास मे होलिका दहन के बाद चैत्रवदी द्वितीया को और फिर दीपावली के बाद कार्तिक बदी द्वितीया को व्रतोत्सव के साथ सम्पन्न होता है। इस अवसर पर बहिनें भाइयो को बुलाकर उनको तिलक लगाती, मिठाई खिलाती तथा उनकी एक प्रकार से पूजा करती है। जब भाई घर नही आ पाता तो वे घर के द्वार के पास भाई-भौजाई की प्रतिमा सूचक गेरू की दो पुतलिया बनाती है और रोली-रक्षा से पूजकर पकवान बनाकर उसका

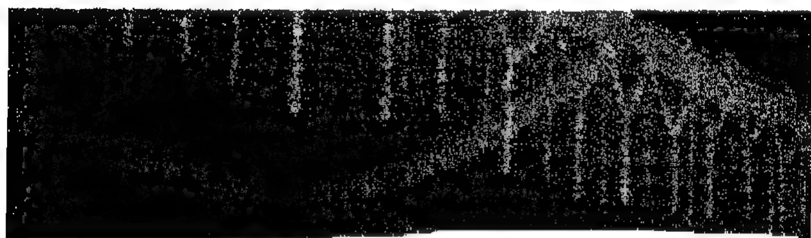
1 पितृपूजा की परपरा रामप्यारे मिश्र 'आज' सायं समाचार (सा वि) 16 सितम्बर, 1973, पृ. - 14
2 ऋग्वेद 10/14/8



यकी



कजरी मेला . कजरी-गायन





देवीधाम मे देवीगीत गाते कलाकार



भोग लगाती है। घर के प्रवेश-द्वार की देहली के नीचे बाहरी ओर गोबर की चौकोर वेदी बनाकर गोबर की ही चार पुतलिया उसके चारो कोनो पर और एक पुतली बीच मे रखी जाती है। फिर धूप, दीप, नैवेद्य के अलावा दैनिक उपयोग की वस्तुओ- जैसे मूसल, चौका, चूल्हा, हडिया, गोबर या मिट्टी की बनाकर या यथार्थ रूप मे रखकर पूजनोपरात बहने भाइयो को टीका लगाकर मिठाई खिलाती है। मूसल से उसकी परछन करती हुई उसके कल्याण और अशुभ-निवारण के लिए प्रार्थना करती है। इसके बदले मे भाई बहिन को प्रणाम करता और उपहार स्वरूप कुछ प्रदान करता है। इस अवसर पर कुछ कहानिया कही जाती है, उनमे से एक इस प्रकार है-

सात बहनो मे एक दुलारा भाई था। उसका विवाह निश्चित हुआ तो वह अपनी छोटी बहन को लेने के लिए उसके घर गया, बाकी सभी बहने काफी दूर थी। उस दिन भाईदूज थी और बहन द्वार पर पूजा कर रही थी। उसने उसका खिला-पिला कर सत्कार किया। भाई ने बहिन को विवाह का आमन्त्रण दिया और घर चलने के लिए कहा। बहिन रात ही मे उठकर रास्ते के लिए पूडिया बनाने के ख्याल से आटा पीसने लगी। उसमे अनजाने मे साप की हड्डी भी पिस गयी। उसी आटे की पूडी बनी और उसे बांध कर भाई को रास्ते मे खाने के लिए दे दिया। भाई अपने घर की ओर चला और थक जाने पर पूडी को एक पेड की शाखा मे बाधकर स्वय सो गया।

इधर उस बहिन ने एक पूडी कुत्ते को खाने के लिए दी। पूडी खाते ही कुत्ता गिरकर मर गया। बहिन को शक हुआ तो वह दौडी भाई की ओर गयी। भाई पेड के नीचे सो रहा था। उसने टॅगी हुई पूडियों को जमीन के भीतर गाड दिया और अपने पास की दूसरी अच्छी पूडियो को भाई के जगने पर उसे खाने के लिए दिया और पानी लाने के लिए पास की बावली के पास चली गयी। वहा एक बढई शाही के काटे एकत्र कर रहा था। बहन ने पूछा- यह क्या है तो बढई ने बताया कि यह वह वस्तु है जिसे बहिन अपने भाई के मुख मे डालती है 'जिससे भाई की अकाल मृत्यु नही होती और वह तमाम बवालो से बच जाता है। उसने यह भी बताया कि बारात आने के दिन सोने की पताकी भाई को गालिया देते हुए द्वार पर लगा दी जाती है तो द्वार नही गिरती अन्यथा द्वार गिरने पर भाई दब कर मर सकता है। इतना ही नही, भावर के समय सिह के आने और भाई के खा जाने का भी भय है, उससे बचने के लिए हरे जौ का पूला उसके सामने डाल देने और एक काटा मण्डप मे गाड देने से सिह भाग जायगा।

विवाह का समय आया, मण्डप बैठा तो बहन भाई को तरह-तरह की गालिया देती हुई पहले



स्वय विवाह की सारी क्रियाएं स्वय करती फिर भाई करता। विवाह में भी बारात के सग बहिन भाई के साथ गयी। वहा भी उसने शाही के काटे द्वार पर खोसे, विवाहोपचार पहले स्वय किया तब भाई से कराया। किंतु भावर के समय वह सो गयी और भाई का भावर होने लगा, इसी बीच भाई मुर्च्छित होकर गिर पडा, तब बहन को खबर की गयी। वह गालियां देती हुई पुन मण्डप मे पहुची, तब तक सिंह आ गया, उसने तदनुसार जौ का पूला उसके सामने फेका और मण्डप मे काटा खोस दिया जिससे सिह भाग गया। विवाह की रस्मे पूरी हुईं और बारात, भाई-बहन सभी सकुशल घर चले गये।

घर पर ग्राम देवता के पूजन के उपरान्त जब सोनार के नेग का समय आया तो बहन मचल गयी और बोली भाई-भौजाई के सग मैं भी सोऊंगी। लाख मनाने पर भी जब नहीं मानी तो लोगो ने साथ सोने की अनुमति दे दी। वह पलंग पर बीच में स्वयं एक ओर भाई को, दूसरी ओर भौजाई को सुला दिया। जब भाई-भौजाई दोनो सो गये तो ऊपर एक सर्प दिखलाई पडा। बहन ने उसे मारा और कपडे के नीचे ढककर स्वय गीत गाती हुई बाहर निकल आयी और औरतो के सग गाने-बजाने लगी। प्रात: वह भी सो गयी, जगाने पर भी नही जगी तो लोग आजिज आकर उसे उसके ससुराल भेजने लगे तो उसने मरे हुए सर्प को लाकर दिखाते हुए पूरी कहानी बता दी। लोगो की समझ मे यह बात आ गई कि बहन ने भाई के प्राणो की रक्षा कैसे-कैसे की। तभी से भाई के अखण्ड सुख के लिए यह व्रत रखा जाने लगा।[1] यह भी कहा जाता है कि इसी दिन यमुना जी अपने भाई यम से मिलने गयी थी तो यम ने वरदान दिया कि इस दिन जो भी यमुना में स्नान करेगा, वह यमलोक नही जायेगा। तभी से भैयादूज के दिन यमुना-स्नान का महत्व प्रतिपादित हुआ, बताया जाता है।[2]

मकर संक्रांति :

सभी भारतीय त्यौहार धर्म और जीवनदर्शन पर आधारित है। जीवन मनुष्य का हो अथवा किसी अन्य प्राणी का, उसके लिए प्रकृति की शक्तियां कार्यरत हैं। हमारे ऋषियों-मुनियो ने जीवन को सुखी बनाने के लिए अपने अनुभवो के आधार पर कुछ नियम बनाये हैं, जिनके अनुपालन के लिए त्यौहारों, कर्मकाण्डो की कल्पना की गयी है। कर्मकाण्ड, जिन्हें हम अब अन्धविश्वास कहने लगे हैं,

1 हिन्दुओ के व्रत और त्यौहार कुवर कन्हैया जू पृ. - 22
2. वही पृ. - 130-31



जीवन को सुखी, व्यवस्थित और क्रमबद्ध करने के लिए ही बनाये गये थे।

अब प्रश्न उठता है कि जीवन का निमित्त भी क्या है। यह कैसे, किस शक्ति से सचालित होता है। शास्त्रो मे जो उल्लिखित है, उसके अनुसार जगत का कारण सूर्य है। सूर्य पर आधारित अनेक पर्वो, त्यौहारो की कल्पना की गयी जिनमे एक मकर सक्रान्ति भी है। मकर सक्रान्ति से मकर राशिस्थ सूर्य उत्तर की ओर यात्रा प्रारभ करता है जिसे सूर्य का उत्तरायण होना कहते है। इस यात्रा की अवधि छ माह होती है। इस समय इससे उष्णता (अग्नि) की उत्पत्ति होती है जो पृथ्वी पर विकीर्ण होती रहती है। सूर्य की इस अग्नि को "ऋतु" कहते है। ऋतुओ मे परिवर्तन का कारण भी सूर्य ही है। उसी की शक्ति की गृहीत इकाई सम्वत्सर है। इस पूरे एक सम्वत्सर मे सूर्य अपनी यात्रा पूरी करके पुन: उसी स्थान पर आ जाता है। सूर्य कर्क राशि से धनु राशि तक उत्तरायण रहता है। पूरा कालचक्र का कारण सूर्य है। इसी से ऋतु परिवर्तन, सम्वत्सर का आगमन, युग कल्प का प्रत्यावर्तन होता रहता है। जीवन, यौवन, जरा, मरण और पुनर्जन्म का कारण भी यही है।

विष्णु सूर्य के अन्यतम रूप तथा वैदिक देवता है। ये द्वादश आदित्यो मे से एक है। ये विश्व भर मे सूर्य की किरणो की तरह व्याप्त हैं-

अथ यत विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति।

विष्णुविर्शेतेवव्यिश्नोतेर्वा यास्के निरुक्त ।।[1]

सूर्य प्रकाश तत्व है और असूर्या अन्धकार है। वह वेदो मे सविता देवतत्व है। डॉ. जनार्दन उपाध्याय के शब्दों मे "ज्योतिस्वरूप सूर्य-मण्डल मे देवतागण स्थित है। वही से सूर्य रश्मियो द्वारा अपनी शक्तियो को व्याप्त करते है। वस्तुत सूर्य ही इस विराट् जगत् मे सवितादेव हैं। सौर मण्डलीय अग्नि, जल, दिक्, पदार्थ के मध्य यही देवता प्रधान है।"[2]

तात्पर्य यह कि सृष्टि का नियता सूर्य ही है। यही जगत का कारण है। इसी की प्रेरणा से व्यक्ति अथवा जीव जगत के कार्यों के लिए क्रियाशील होता है। सूर्य-वृत्त या परिधि से सारी गृहस्थी भी संचालित होती है।

मकर संक्रान्ति का सूर्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। 14 जनवरी के दिन सूर्य धनु राशि से मकर राशि तक होने के लिए संक्रमणशील होता है। मेष से लेकर धनु तक की सूर्य-यात्रा सूर्य की दक्षिण

1. यास्क · निरुक्त - 12/19
2. मकर सक्राति सूर्य की उत्तरायण यात्रा - "आज" साय समाचार (सा वि.) 14 जनवरी, 1973 पृ - 2



पथ की यात्रा है जो काल अग्नि की न्यूनता के कारण अन्धकारमय-अज्ञानमय माना जाता है। इस छ माह की अवधि मे कोई भी शुभ कार्य शास्त्रसम्मत नही माना जाता। सूर्य का उत्तरायण होना शुभ है। यह भी मान्यता है कि दक्षिणायन मे सूर्य के होने पर जब मृत्यु होती है तो जीव को मोक्ष नही मिलता। भीष्म पितामह ने सूर्य के उत्तरायण होने पर ही मृत्यु का वरण किया था। सत्कर्मो मे लीन व्यक्ति ही उत्तरायण मे मृत होता है। इस तरह सूर्य सत्कर्मो का भी प्रेरक हुआ।

मकर सक्राति के अवसर पर तीर्थाटन, मकर स्नान, गंगा या प्रयाग मे त्रिवेणी स्नान का विधान है। प्रयाग हरिद्वार मे समुद्रवत भीड एकत्र होती है। इस दिन तिल, उरद चावल का दान उत्तम माना जाता है। प्रत्येक घर मे खिचडी बनायी-खायी जाती है। इसलिए लोक मे इसे खिचडी-पर्व भी कहा जाता है। इसी दिन से नया अन्न, गुड खाया जाता है। इस दिन ब्राह्मणो को दान दिया जाता है। तिल और चावल का लड्डू बनाकर ब्याहिता बेटी के घर भेजने की परिपाटी है। सबसे बडा मकर का त्योहार 12 वर्षो पर आता है जिसे पूर्ण कुम्भ कहते है। छ वर्षो पर अर्द्धकुम्भ स्नान मे आस्था और विश्वास है। तिल, गुड का उपयोग जाडे की रूक्षता को समाप्त करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार यह त्यौहार स्वास्थ्य के लायक भी सिद्ध होता है। एक कहावत भी है-

तिल चटके, जाडे सटके,
तिल चटके दिन बढके।

"ऋग्वेद" का एक मत्र है जिससे तिल के सेवन का महत्व स्पष्ट होता है-

"ब्रर्हि मत्त यवमत्तमथो माषमथो तिलम्।
एष वा भागो निहिते रत्नधेयाय दन्ती
मा हिसिष्ट पितर मातर च।।"

मकर सक्राति पर पतग उडाने की परपरा भी स्वास्थ्य और मनोरजन के लिए ही चली होगी। इस दिन मुक्त आकाश मे पतग विविध रगो के प्रतियोगितात्मक तरीके से उडाये जाते है। चरक के अनुसार मकर सक्राति विसर्ग काल का अत और आपात काल का प्रारभ है। इसमे मनुष्य और वनस्पतियो का बल चरम सीमा पर होता है-

"आदावन्ते च दौर्वल्य विसर्गो नयोर्नृणाम्।
मध्ये मध्य बल वृन्ते श्रेष्ठमग्रे विनिर्दिशेत्।।"[1]

1 चरक सूत्र - 6



महाशिवरात्रि :

"शिव" का शाब्दिक अर्थ है- कल्याण। शिव कल्याण के देवता है। कल्याण करने वाला महान होता है, इसी कारण तो शिव को महादेव कहा गया है। वे देवों मे देव महादेव है। अकल्याण की स्थिति उत्पन्न होने पर, अन्याय अत्याचार, उत्पीडन, पाप और अधर्म बढ़ने पर शिव सहार के देवता बन जाते है। ब्रह्मा विश्व की रचना करते है, तो विष्णु उसका पालन-पोषण और शिव सहार।

प्रलयकर शिव की पूजा की परपरा भारतीय धर्म-साधना मे अनादिकालीन है। प्रलयकर होते हुए भी शिव सबके लिए प्रिय है। औघडदानी होते हुए भी पार्वती के लिए प्राप्य है जिसके लिए वे घनघोर तप करती हैं। पार्वती ने शिव के लिए तप किया, इसी कारण भारतीय नारियो मे शिव-पूजा सबसे अधिक लोकप्रिय हुई। वैसे तो भोजपुरी भाषी जनपदो मे सर्वत्र घर-घर शिव की पूजा नित्य की जाती है। तुलसी-पूजा भी शिव-पूजा का प्रतीक है जिसे घर-घर पूजा जाता है, जल अक्षत अर्पित किया जाता है। शिव की जटा मे गगा जी समाहित थी, जिन्होने प्रवाहित होकर जगत का कल्याण किया और इहलोक और परलोक दोनों को सुधारने वाली बन गयी।

भारत भर में शिवरात्रि का पर्व मनाया जाता है। श्री रामजी पाण्डेय ने शिवरात्रि की व्याख्या करते हुए लिखा है-"शिव से रात्रि और शिव प्रदान करने के कारण इसे शिवरात्रि कहा गया है।"[1] पुराणो मे विशेषकर शिव पुराण में शिवरात्रि से सम्बन्धित अनेक कथानक आए है। शिव के रूद्र और शिव दो रूपो का उल्लेख सर्वत्र हुआ है। वस्तुतः प्राण शक्ति ही शिव का स्वरूप है[2] जो व्यष्टि और समष्टि दोनों रूपों मे प्रतिभाषित होती है। शिव की पूजा आर्य और अनार्य दोनो मे प्रचलित रही हे। आज भी आदिवासी "बडादेव" के रूप मे शिव की पूजा विभिन्न अवसरो पर करते है। शिवरात्रि के दिन मेला और जुलूस निकालने की परपरा रही है। भोजपुरी भाषी जनपदो मे काशी और काशी क्षेत्र का सर्वाधिक महत्व है। कहते हैं काशी शिवजी के त्रिशूल पर बसी है और वह अनाशवान है। सृष्टि का प्रलय हो जाने पर भी वह प्रलय से परे है। सभी भोजपुरी भाषी जनपद काशी के ही प्रभावी क्षेत्र मे है, अत उन्हे काशी क्षेत्र कहा जाता है। काशी क्षेत्र मगहर से भिन्न मोक्ष का कारक है- "काश्यामरणामुक्ति"

1. *आज साय समाचार 3 मार्च, 1973 पृ. - 3*
2. *प्राणावैरुद्रा . जै इ 4/2/6*



मरण मंगल यत्र विभूतिश्च विभूषणम।

कौपीन यत्र कौशेय सा काशी केन मीयते।

अर्थात् जहा मरना भी मगलमय हो, विभूति भष्म लेपन ही विभूषण हो, कौपीन ही सर्वोत्तम वस्त्र हो। वह काशी भला किसके लिए मुक्ति प्रदायिनी नही है ? अर्थात् सबके लिए है।

शिवरात्रि के अवसर पर अधिकतर लोग व्रत रहते हैं। प्रात काल किसी शिव-मन्दिर मे जाकर जल, पुष्प, अक्षत, बेलपत्र से शिवार्चन करते है। मदिरो मे भजन-कीर्तन चलता है। लाखो व्यक्ति गगा-स्नान करते है, दान देते है। शिव स्थानो पर मेले लगते है।

शिव के अनेक रूप हैं जिनका उल्लेख वेदो, शास्त्रो, पुराणो में किया गया है। इनका एक प्रबल रूद्र रूप है। ऋग्वेद मे रूद्र को भक्तो का पिता माना गया है।[1] ग्राम के सभी मनुष्यों तथा पशुओ को स्वस्थ, पुष्ट तथा निरोग रखने के लिए महान कपर्दी या जटाधारी और वीरों के विनाशक रूद्र की मननीय स्तुति करते हुए कहा गया है कि-

"इमा रूद्राय तवसे कपर्दिनो

क्षयद्वीराय प्रमरामहेमती

यथासमसद्द्विपदे चतुष्पदे

विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन्ननातुरम।।[2]"

शिव का वाहन वृषभ (बैल) है। बैल कृषि-कार्य के लिए अनिवार्य है। उससे कृषक को जीवन मिलता है। वही अप्रत्यक्ष रूप से अन्नदाता है। उससे जगत का पालन-पोषण होता है। इसी कारण हम उसकी पूजा करते है। शिवरात्रि पर पशु-मेला का आयोजन भी किया जाता है।

'शिवमहिम्नस्तोत्र' में महेश्वर शिव की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सरस्वती भी चाहे कि उनकी महिमा का बखान कर ले तो भी नही कर सकती-

"असित गिरिसम स्यात्कज्जल सिंधुपात्रे

सुरतरूवर शाखा लेखनी पत्रमुवी

लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकाले,

तदपि तव गुणानामशि ! पार नयाति।।[3]"

1 ऋग्वेद म. सू. 34 म 3

2 ऋग्वेद 1-114-1

3 शिवमहिम्न स्तोत्र - 32



अर्थात् पर्वत को ही स्याही बना लिया जाय, समुद्र को ही दावात बना लिया जाय, कल्पवृक्ष की लेखनी से यदि शिव की महिमा का वर्णन स्वय सरस्वती जी ही करना चाहे तो भी नही कर सकती।

ऐसे शिव को, शिवतत्व को भला हम कहा तक जान सकते है, अत इतना ही कहना उचित है कि-

तव तत्व न जानामि कीदृशोस्तिमहेश्वर।

यादृशस्त्वं महादेव तादृशाय नमोस्तुते।।

इसी भावना से सम्पूर्ण जन-मानस शिवोपासनारत है। महाशिवरात्रि के महत्व का वर्णन कथा-रूप मे लिग पुराण मे किया गया है।[1]

रक्षाबन्धन :

रक्षा-बन्धन स्नेह और कर्तव्य का प्रेरक पर्व है। भारत की सस्कृति विभिन्नता मे एकता का प्रतीक है। यहा अनेक धर्म, त्यौहार, उत्सव एवं पर्व है, किन्तु सभी पर्वों की आत्मा एक है और सभी त्यौहारो के मनाने का उद्देश्य भी भाई-चारा, प्रेम, सोहार्द, सुखी जीवन, मानव मात्र का कल्याण तथा राष्ट्रीय सामजस्य है।

रक्षाबन्धन राष्ट्र को एक सूत्र मे बाधने वाला सास्कृतिक पर्व है, जो भाई-बहन के स्नेह को तो मजबूत करता ही है, निर्बल एव असुरक्षित व्यक्ति को भी सबलता एव सुरक्षा प्रदान करता है। रक्षाबन्धन श्रावणी पर्व है जो गदराई, हरियाली धरती के उन्मुक्त वातावरण मे उन्मुक्तता का सदेश दे जाता है। श्रावण मास से ही त्यौहारो की श्रृखला प्रारभ हो जाती है जो वर्ष भर चलती है। श्रावणी शुक्लपक्ष की पूर्णिमा की तिथि विशेष रूप से ब्राह्मण समाज के लिए पुण्य तिथि है। यह सरल, सात्विक, सास्कृतिक जीवन की याद तो दिलाती ही है, उनके त्यागमय कल्याणकारी, ब्राह्मचर्य जीवन के लिए भी प्रेरणा देती है। एक उल्लेख के अनुसार "प्राचीन काल मे श्रावणी के दिन ज्ञानार्जन के जिज्ञाषु और ब्रह्मचारी प्रात काल नदी अथवा जलाशय के समीप जाकर विधि-विधान से यज्ञोपवीत्त (जनेऊ) धारण करके साढे चार मास तक एकमात्र वेदाध्ययन मे ही लीन रहकर पौष शुक्ल की प्रतिपदा के दिन जलाशय या नदी के किनारे आकर विसर्जन करने का सकल्प करते थे एव शिक्षित वर्ग के

1 लिग-पुराण तथा हिदुओ के व्रत और त्यौहार कृष्ण कन्हैया, जू. पृ. - 15



लोग इस दिन पुराने यज्ञोपवीत को बदल कर हाथ से कत सूत द्वारा तैयार किया गया यज्ञोपवीत धारण कर मत्र-रक्षा का सकल्प किया करते थे।"[1]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन तीनो वर्णों को जनेऊ धारण का अधिकार था। तीन ताग का यह जनेऊ लोक-सेवा, वैदिक सस्कृति एव पैतृक परपरा के अनुसार जीवन-यापन करने का व्रत था। आज अन्य जातिया भी जनेऊ धारण करने लगी हैं। यह ठीक बात है, किंतु उन्हें भी इन सत्कर्त्तव्यों की प्रेरणा लेनी चाहिए। इससे समाज के आचरण मे पवित्रता आ सकती है।

श्रावणी पर्व वैसे तो देश-विदेश भर मे, जहां भी हिन्दू है, मनाया जाता है, किन्तु दक्षिणी गुजरात, बगाल, उडीसा तथा उत्तर-भारत सहित उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजपूताना तथा पंजाब मे विशेष धूमधाम से मनाया जाता है। इस दिन ब्राह्मण अपने यजमानो की तथा बहनें भाइयो की दाहिनी कलाई मे राखी (रेशमी धागा) बाधती, मिष्ठान्न खिलाती, तिलक लगाती हैं। इससे दोनो पक्षो को स्नेहसूत्र, कर्त्तव्य, रक्षा, शक्ति, दीर्घायुष्य, कर्मठता, कुशलता, पवित्रता, सात्विकता, सादगी, स्नेहासिक्तता का भाव व्यजित होता है। भाई सर्वाधिक बहन की रक्षा का व्रत लेता है। इसी दिन हिन्दू कुल की आर्य ललना महारानी कर्मवती को यवन वश के भाई से अपनी रक्षा के लिए हाथ फैलाना पडा था। इस तरह यह त्यौहार हिन्दू-मुसलिम एकता का भी प्रतीक बन गया है।

इस त्यौहार का पौराणिक महत्व भी है। एक बार राजा बलि से इन्द्रादि देवगण आतकित एव पराजित होकर घूर रहे थे। उनकी दीन-हीन दशा को देख कर भगवान ने वामनावतार धारण करके बलि को बाधा था। तभी से यह त्यौहार अन्याय पर न्याय की विजय का भी प्रतीक बन गया और रक्षा-सूत्र बाधते समय इस मत्र का उच्चारण किया जाने लगा-

"येन बद्धोबली राजा दानवेन्द्रो महाबल तेन त्वामपि बध्नामि रक्षे माचल-माचल।"

महाभारत मे भी एक कथा आयी है जिसके अनुसार महाराज युधिष्ठिर ने एक बार कृष्ण से समस्त रोगो और अशुभ फलो को नष्ट करने का एसा उपाय पूछा था जिसे एकमात्र कर लेने से जीवन भर रक्षा होती रहे तो कृष्ण ने बताया था कि निरतर बारह वर्षों तक देवासुर संग्राम मे असुरो ने सभी देवताओ के साथ इन्द्र को भी जीत लिया था। तब इन्द्राणी ने इन्द्र को सकट-मुक्त करने के लिए ब्राह्मणो से स्वस्तिवचन कराकर भगवान इन्द्र के हाथ मे स्वय इस रक्षा-सूत्र को बाधा था जिसके बल पर इन्द्र को विजयश्री मिली थी। तभी से यह सूत्र शक्ति का प्रतीक बन गया।

1. स्नेह और कर्त्तव्य का पर्व रक्षाबन्धन श्रीमती सुमित्रा देवी अग्रवाल
'आज" दैनिक, 4 अगस्त, 1968 पृ. - 15



इसी तरह एक ऐतिहासिक आधार भी मिलता है। आज से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व मेवाड नरेश महाराणा सग्राम सिह स्वर्ग सिधार चुके थे। उनके कुमार महाराणा विक्रमादित्य सिहासनारूढ थे। उस समय राज्य मे आपसी द्वेष और वैमनस्य व्याप्त था जिसकी सूचना गुजरात के बादशाह बहादुर शाह को मिली। उसने मेवाड पर आक्रमण कर दिया। राजमाता कर्मवती और दुश्मनो मे युद्ध छिड गया। मुसलमानो ने मेवाड का किला घेर लिया। कुछ दिन बाद श्रावणी पर्व आया। महारानी ने इस दिन पवित्र धागो से मेवाड-रक्षा का व्रत लिया और दिल्ली के राजा हुमायू को रक्षा-सूत्र के साथ पत्र लिख भेजा कि "महाराज अब इस ससार में नही है। आप यह राखी स्वीकार करके मेवाड की गद्दी की रक्षा कीजिए। अपने धर्म की रक्षा तो मै अग्नि द्वारा कर सकती हू।" इस पत्र और रक्षा-सूत्र का हुमायू पर इतना प्रभाव पडा कि वह कर्मवती को बहन का दर्जा देकर मेवाड की रक्षा के लिए युद्धभूमि मे कूद पडा। किंतु तब तक मेवाड की तमाम ललनाओ ने अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया था और महारानी कर्मवती भी उनमे एक थी। इस घटना का और भी प्रभाव हुमायू पर पडा और उसने बहादुर शाह की सेना को पराजित करते हुए अपनी धर्म की बहन स्वर्गीया राजमाता कर्मवती की चिता की भष्म अपने मस्तक पर लगाते हुए कहा "बहिन कर्मवती, मै तुम्हारी राखी का व्रत पूरा न कर सका, किंतु मेवाड स्वतत्र हो गया, इसका मुझे सतोष है।"

इससे जाहिर है कि इस रक्षा-सूत्र मे वह शक्ति है जो देश की रक्षा का सकल्प दिलाती है तथा बहिन के अपार स्नेह को तरोताजा करके भाई को शक्ति-सम्पन्न बनाती है।

रक्षाबन्धन का त्यौहार भाई-बहन के प्रेम का त्यौहार है। उस दिन भाई को बहिन ने नही देखा तो दु:खी होती है-

"आहिरे बवइया कैसे निदिया लगतु है रामा
जेकर बेटी सावन मे ससुरवा ना।
इटिया क भाई पथरवा क बाबा रामा।
जेकर बेटी......................................
ओही रे विरनवा क कठिन करेजा रामा
जेकर बहिनी सावन मे ससुरवा ना।।"



रामनवमी :

रामनवमी भगवान श्रीराम और मा दुर्गा की उपासना का पर्व है। यह वर्ष मे दो बार आता है- (1) आश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक, शारदीय नवरात्र तथा, (2) चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक वासतिक नवरात्र। इसी दिन भगवान राम का जन्म हुआ था।

नौ दिन का व्रत होने के कारण इसे नवरात्र कहते है। बहुत से भक्त नौ दिनो तक फलाहार करते हैं। नवाह्न "रामायण" का पाठ किया जाता है। "दुर्गाशप्तशती" का नव दिन का पाठ भी बैठाया जाता है तथा ब्राह्मणो को गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र दान दिया जाता है।

"अगस्त्य सहिता" मे लिखा है कि यदि चैत्र शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो और मध्याहनव्यषिनी हो तो उसको महापुण्य वाली जाननी चाहिए।[1] कुवर कन्हैया जी के विचार से यह हमारा राष्ट्रीय पर्व है। यह सस्कृति का स्मारक तथा हमारे विस्मृत आदर्शों का परिचायक है। दक्षिण भारत मे यह पर्व बडी धूमधाम से मनाया जाता है। अयोध्या में भी इस तिथि पर बड़ा भारी मेला लगता है तथा दूर-दूर के लोग रामचन्द्र के मदिर मे भगवान का दर्शन करने जाते हैं।[2]

बगाल मे नवरात्र पर दुर्गा-पूजा का विस्तृत आयोजन किया जाता है। सभी शक्तिपीठो मे-विन्ध्याचल सहित नौ दिनो का महोत्सव आयोजित होता है। चित्रकूट मे रामायण-मेला आयोजित किया जाता है जिसमें देश स्तर के विद्वान आमत्रित किये जाते हैं। तात्रिक अलग साधना करते है।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि रामनवमी लोक और वेद-शास्त्रानुमोदित धार्मिक तथा राष्ट्रीय पर्व है। इन अवसरो पर पूरा जन-मानस राम और दुर्गामय हो जाता है।

बसन्त :

भारतीय जीवन मे बसन्त ऋतु का आगमन एक उत्सव के रूप मे होता है। बसन्त ऋतुओ का राजा होने के कारण सर्वमान्य है। इसमे कही धर्म, जाति अथवा साम्प्रदायिकता का भाव आड़े नही आता। इसी कारण बसन्तोत्सव के आयोजनो मे राजा-प्रजा, देवी-देवता भी समान रूप से आनंदित आह्लादित होते है। यह फाल्गुन और चैत दो माह का उत्सव है और विविध प्रकार से मनाया जाता है। इसे कभी मदनोत्सव, कभी होलिकोत्सव तो कही बसतोत्सव के रूप मे मनाने की परपरा रही है।

1. हिदुओ के व्रत और त्यौहार कृष्ण कन्हैया, जू. पृ. - 40
2 वही - पृ. - 41



इस पर्व को प्रकृति का सबसे अधिक साहचर्य प्राप्त रहता है। आम भी बौरा जाते है। महुआ की गन्ध मन को मादक बना जाती है। पलाश लाल हो उठता है। बसन्त नव जागरण, नव चेतना, मस्ती, मादकता, उल्लास, सरसता, उन्मुक्तता, मधुरता का त्यौहार है। इसमे बूढा भी एक बार जवान हो उठता है-

"फागुन मे बाबा देवर लागी।"

किसी भी भाषा का कवि हो, अथवा जनकवि ही क्यो न हो, बसन्त की बसती बहार उसे प्रभावित कर ही जाती है-

आइल बसन्ती बहार,

चुवे महुआ भिनुसार।

बउरैला अमवा न आइल फगुनवा

बरिसे ला रस के फुहार।।

बसत शिव-पर्व भी है। भारतीय पर्वो-त्यौहारो की यह विशेषता होती है कि वे प्रकृति अथवा धर्म-भावना से जुड जाते है। इसी कारण धर्मप्राण जनता उसे शीघ्र अपना लेती है। बसत के अवसर पर शिव-मदिरो मे मेला लग जाता है। प्रात होते ही नर-नारी मगल और भक्ति के गीत गाते, बाजा बजाते, नाचते-थिरकते, मत्र जाप करते, धोती-चादर ओढे, हाथ मे जल लिए, पुष्प-माला, वेलपत्र, अक्षत से शिव जी की पूजा करते है। विशेष रूप से धतूरे का फल, फूल चढाते है। महादेव औघड दानी जो हैं। इस दिन व्रत रखा जाता है।

इस अवसर पर अभिषेक की परंपरा रही है। महादेव को जलाभिषेक किया जाता है गगाजल चढ़ाया जाता है और स्वय भी इन्द्र वारुणी, मतस्याक्षी, ब्राह्मी, वच, ब्रह्मुनवर्चला, पीपल, सेधानमक स्वर्ण शंखपुष्पी, विष, गोघृत, मधु आदि के सेवन का विधान आयुर्वेदशास्त्र के अनुरूप है। इसी प्रकार ब्राह्मी, शंखपुष्पी, गुरिच, मुलहठी का सेवन कायाकल्प के लिए करने का विधान है। टेरू के पुष्प-रस से स्नान करने से चर्मरोग से मुक्ति मिलती, ऐसा समझा जाता है।

बसत सरस्वती के पूजन का भी पर्व है। इस दिन विद्वत्जन मा की पूजा विधि सम्मत तरीके से करते हैं। पुराण-कथा के अनुसार एक बार सरस्वती ने पुत्रोत्पत्ति की कामना से हिमालय पर जाकर तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने स्वय उनकी पुत्रेच्छा की पूर्ति की। ब्रह्मा जी द्वारा प्राप्त इस पुत्र ने उत्पन्न होते ही छन्दोवद्ध वाणी मे अपनी माता सरस्वती की वदना की, जिससे



प्रसन्न होकर सरस्वती ने वरदान दिया, जाओ तुम आज से मुझसे भी बडे हो, किंतु तुम प्रोढ पुरुषो की तरह आचरण मत करना, नयजात शिशु ही बने रहो, तुमने वेद से पृथक भाषा छन्द मे स्तुति की है, इस कारण तुम्हारी लोकप्रियता बढेगी।"

कहते है, ऐसा कहकर पुत्र को वृक्ष की छाया मे सुलाकर सरस्वती आकाशगंगा मे स्नान करने चली गयी। इधर धूप तेज हो जाने के कारण जब नवजात शिशु रोने लगा तो उसे शुक्राचार्य अपने आश्रम मे ले गये। वहा उस शिशु ने प्राण-रक्षा के कारण उशनश मुनि को भाषा छन्द की उस वाणी को प्रत्यार्पित कर दिया, इधर तब तक मा सरस्वती स्नानोपरात लौटी तो देखीं कि पुत्र नदारद था। तब बाल्मीकि ऋषि ने मा को आश्रम तक पहुचाया जिसकी कृतज्ञता स्वरूप उन्होंने बाल्मीकि को छन्दोवद्ध वाणी की शक्ति प्रदान की। वे हॅसी-खुशी मे नदी तट की ओर लौटे जहां उन्होन क्रौच द्वन्द्व की घटना देखी जिससे "मा निषाद प्रतिष्ठात्व अगम सास्वती समा" की अमर वाणी उनके हृदय से नि सृत होकर जगत्-कल्याण का कारण बनी।[1] तभी से बसंतोत्सव सरस्वती, शिव, ब्रह्मा, वृक्ष पूजन के उत्सव के रूप मे मनाया जाता है। इस पर्व पर गगा-स्नान, कुम्भ-स्नान, त्रिवेणी-स्नान, शिवार्चन का बडा महत्व है। कवियो, विद्वानो, शिवभक्तो सभी का यह त्यौहार है। इसी दिन सरस्वती वरद पुत्र महाकवि सूर्यकात त्रिपाठी निराला का जन्म हुआ था, अत स्थान-स्थान पर निराला जयन्ती भी इसी दिन मनायी जाती है। सब मिलाकर भारत मे, विशेष रूप से भोजपुरी भाषी जनपदो मे यह त्यौहार हर जगह समरोहपूर्वक मनाया जाता है। ऋग्वेद मे कहा गया है कि "सरस्वती शरीर मे रहने वाला जो गुण ससार के सुख का कारण है, जिससे सारे वरणीय धनो की रक्षा करती है, जो गण बहु रत्नो का आधार है, जो समस्त धनदात्री तथा कल्याणकारिणी है, वह सरस्वती हमारे लिए सब कुछ प्रकट करो-

यस्तेस्तन शशयो यो भयोभूर्येन
विश्वा पुष्यसि वार्याणि।
यो रत्न धावसुविद य सुदत्त
सरस्वेतितामिह धातवे क ।।[2]

कुवर कन्हैया जू के अनुसार यह हमारा सामाजिक त्यौहार है। यह हमारे आनदातिरेक का प्रतीक है।[3]

1 *हर्ष चरित, काव्यमीमासा, सरस्वती के पुत्र और पुत्रवधू का भारत भ्रमण शीर्षक लेख राजेश कुमार सर्मा, आज 19 जनवरी, 1964, पृ. - 11*

2 *ऋग्वेद 1/164/49*

3 *हिन्दुओ के व्रत और त्योहार पृ. - 10*



व्यास पूर्णिमा · गुरु-पर्व :

आषाढ मास की पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा कहा जाता है, क्योकि व्यास जी गुरुओ मे श्रेष्ठ थे और उनके शिष्यो ने उनकी पूजा के लिए यही दिन निश्चित किया था। तभी से इस तिथि पर अपने-अपने गुरुओ की पूजा करन की परपरा का श्रीगणेश हुआ। कुवर कन्हैया जू के अनुसार "प्राचीन काल मे विद्यार्थियों से शुल्क नही लिया जाता था। वे वर्ष मे इसी तिथि पर गुरु की पूजा करते थे और उन्हे यथाशक्ति दक्षिणा देते थे। यह पूजा केवल गुरु तक ही सीमित नही थी, वरन पिता-माता भाई आदि सबकी पूजा की जाती थी।"[1]

गुरु-पूजा के दिन शिष्य को चाहिए कि प्रात काल उठकर स्नान-पूजा आदि दैनिक क्रियाओ से निवृत्त होकर गुरु के पास जाये, उन्हे किसी उच्चासन पर आसीन करे, उनका पुष्प-माला, अक्षत, रोली, धूप-दीप, नैवेद्य से विधिवत श्रद्धापूर्वक पूजन करे, उन्हे साष्टाग प्रणाम करे, इच्छा और सामर्थ्य के अनुसार अन्न, वस्त्र अथवा द्रव्यादि भेंट करे। ऐसा करने से उसे विद्या आती है और जाने-अनजाने मे हुए अपराधों का शमन हो जाता है। क्योकि गुरु की महिमा शास्त्रो, पुराणो, उपनिषदो मे गायी गयी है।

विजयदशमी :

भोजपुरी भाषी जनपदों का हृदय है काशी । काशी और रामनगर की विजयदशमी दुनिया भर मे प्रसिद्ध है। यही कारण है कि आश्विन माह का माह भर लगने वाला यह मेला अपनी तरह का अनोखा और बेजोड़ है। इसे देखने के लिए प्रवासी भारतीय तथा विदेशी भी भारी सख्या मे यहा आकर माह भर टिक जाते है। इस मेले की विशेषताए यह है कि इसमे भाग लेने वाले पात्रो को महाराज काशी नरेश के किले मे ही नियमपूर्वक सात्विक भावना से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए रामलीला का अभ्यास कराया जाता था। यह लीला साय चार-पाच बजे से प्रारभ हो जाती थी। इसके लिए अलग-अलग स्थान बने हुए है, जैसे पचवटी, लका, अयोध्या, अशोकवाटिका, नक्कटैया भरतमिलाप आदि। इस पूरी लीला में कही भी ध्वनि विस्तारक का प्रयोग नही किया जाता जब कि भीड बेशुमार होती है। काशी नरेश परपरया पूरी रामलीला मे स्वयं रहते है और उन्हे महादेव का प्रतीक मान कर दर्शक बीच-बीच मे हर-हर महादेव का नारा लगाते हैं।

1 *हिंदुओ के व्रत और त्यौहार पृ. - 68*



विजयदशमी का त्यौहार विजय-पर्व के रूप मे मनाया जाता है। इसी दिन भगवान श्री राम ने अन्यायी रावण पर विजय पायी थी। श्री राम क्षत्रिय वशी भी थे, अत आरभ मे क्षत्रीय वंशोत्पन्न जन इसे और भी जोशोखरोश से मनाते थे, किंतु अब यह पर्व सार्वभौमिक और सर्वमान्य हो गया है। सोनभद्र मे राजपुर, मिर्जापुर मे विजयपुर इसी प्रकार अन्य भोजपुरी भाषी जनपदो मे राज परिवार से सम्बद्ध स्थलो पर विशेष धूम-धाम से इस त्यौहार को मनाने की परपरा रही है। प्रीवीपर्स समाप्त होने से पूर्व जब राज-रियासत का बोलबाला था तब इस अवसर पर प्रजा द्वारा राजा को बतौर नजराना विक्टोरिया के समय का कम से कम एक रुपया भेट दिया जाना अनिवार्य था। इसीलिए विजयदशमी के अवसर पर राजा का दर्शन, उसके अभाव मे नीलकण्ठ का दर्शन शुभ माना जाता था।

विजयदशमी पर शस्त्रपूजन की परंपरा रही है। आज भी क्षत्रिय वंशी इस दिन अस्त्र-शस्त्र की पूजा करते है। राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ से जुडे लोग इस परंपरा को आज भी कायम रखे हुए है।

विजयदशमी का त्यौहार ग्रामीण अचलो मे विशिष्ट प्रकार से मनाया जाता था। इस दिन सायकाल गाव के बाल-युवक एकत्र होकर दरवाजे-दरवाजे जाते और पान खाते थे। इस दिन शुद्ध घी की पूड़ी-सेवई प्राय· हर घर मे बनती थी। इस तरह यह त्यौहार एक साथ अन्याय, असत्य पर न्याय और सत्य की विजय, शक्ति-सचय, मेल-मिलाप, भाई-चारा का प्रतीक बन गया है। भोजपुरी भाषी जनपदों में ही नही, देश भर मे यह पर्व बडे उत्साह से मनाया जाता है। कुल्लूघाटी का दशहरा भी प्रसिद्ध है।

विजयदशमी शत्रु को परास्त करने की पुण्यतिथि है। 'ज्योतिर्निबन्ध" मे लिखा है कि आश्विन की शुक्ल पक्ष की दशमी को तारानुरूप होने के समय "विजय" नामक काल होता है जो सिद्धिदायक है।[1]

कुवर कन्हैया जू ने इसे राष्ट्रीय पर्व कहा है।[2] उन्होने शिव -पार्वती प्रसग की एक कथा के द्वारा यह सिद्ध किया है कि जो राजा विधिपूर्वक विजया पूजन करता है, वह सदैव अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।[3]

1. *ज्योतिर्निबन्ध का विजय दशमी प्रसग*
2. *हिन्दुओ के व्रत और त्योहार कुवर कन्हैया जू पृ - 117*
3. *वही पृष्ठ - 118-19*



होली :

होली हमारे देश के सांस्कृतिक जीवन का उल्लास-पर्व है। बसन्त ऋतु मे मनाया जाने वाला यह त्योहार नर-नारी, बाल-वृद्ध, अमीर-गरीब, राजा-रक सबमे नयी बासन्ती उमग पैदा कर देता है। आर्य इसे बसन्तोत्सव के रूप मे मनाया करते थे तथा इस दिन किंशुक पुष्पो का रग पानी में घोलकर सीग की पिचकारियो से दूसरे पर छिडकते थे। इसी दिन कामदेव की पूजा का भी विधान था, इसी कारण इसे मदनोत्सव भी कहा जाता था। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे, दण्डी ने दशकुमारचरित मे, कालिदास ने रघुवंश, अभिज्ञान शाकुन्तल तथा ऋतुसहार मे, हर्ष ने रत्नावली मे इसका सरस वर्णन किया है। "रत्नावली" के अनुसार राजा और रानिया भी इस नागरिक पर्व मे सम्मिलित होती थी। इस रसोल्लास को देखने के लिए सम्राट के राज-प्रसाद की ओर चलने का उल्लेख हुआ है।[1] राज-प्रसाद का प्रागण रंग का क्रीडास्थल हुआ करता था। रसज्ञजन वहा केसर-पलाश के रगो से भरी पिचकारिया और अबीर कुमकुम की भारी झोरिया लिए एकत्र होते थे। इतना ही नही मृदंग और डफ की ताल पर प्रतिध्वनित राग-रागनियो के बीच कामिनियों द्वारा रग-प्रहार प्रारंभ हो जाता था। नृत्य और गान का वृहत् आयोजन होता था। "कर्पूर मजरी" मे इस अवसर पर चर्चरी राग गाने का उल्लेख है। मदन लीलाएं होती थीं जिसमे सरस अभिनय भी होते थे। दासिया और चेरिया लोगों का मनोरंजन करती थी और प्रत्येक के जीवन को मधुमय होने की कामनाएं करती थीं-

जिह्वया अग्रे मधु मे जिह्वा मूले मधूलकम्।
ममेदह क्रतावक्सो मम चित्त-मुपायति।।[2]

अर्थात् मेरे जिह्वाग्र पर मधु रहे, जिह्वा मूल में मधु हो। हे प्रभु तुम मेरे प्रत्येक ज्ञान मे, प्रत्येक सकल्प में तथा प्रत्येक कर्म में अनुप्राणित हो जाओ, मेरे चित्त में बस जाओ।

होलिकोत्सव अथवा मदनोत्सव प्रकृति-पूजा का भी पर्व है, अत प्रकृति कभी भेद नही करती। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, वन, वृक्ष, नदिया, झरने तथा पहाड अमीर-गरीब सबके लिए समान रूप से अपनी किरणो, रसों, फलो-फूलो, छायाओ से अभिसिंचित, आह्लादित, आनंदित करते रहते हैं। उसी प्रकार इस उत्सव को भी बिना किसी भेदभाव के मनाने की परपरा रही है। इस दिन सारे कलेश, ईर्ष्या, द्वेष, मनोमालिन्य मिट जाते थे। काश, आज भी यह उत्सव ऐसा ही जीवन वर्षा जाता।

1. *मदन महीया स पुरजनमवलोकयितुं प्रासादअभिमुख प्रस्थिती देव*
2. *रत्नावली 1-34-2*



होली को कुछ लोग शूद्रो का त्यौहार कहते है, इसलिए कि इस अवसर पर अश्लील शब्दावलिया का प्रयोग किया जाता है। किंतु इसका अध्यात्मिक रहस्यात्मक भाव और ही है। जोगीडा और कबीर गायन एक विद्या है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार उत्तर प्रदेश और बिहार मे होली के अवसर पर जो अश्लील और अश्राव्य गान गाये जाते है, उन्हे जोगीडा कहते है।[1] कबीर गाने के लिए युवावर्ग समूह मे गाव में निकलता है। बनारस तथा उसके आसपास (चुनार आदि) के भोजपुरी भाषी जनपदो मे कही-कही हिजडे जोगीडा गाते और नृत्य करते है। हिजडे नामर्द होते हैं और स्त्रियो का सा साज-श्रृगार करके ढोल अथवा घड़े की थाप पर नृत्य गान और अभिनय करते है। जोगीडा के बोल- "जोगीरा सारा रारा रारा रा" और कबीर का बोल- "कबीर छर रर र" होता है। होली के अवसर फाग, होली के लोकगीत गाये जाते है जो बडे सरस होते है। यथा-

"फागुन मे बाबा देवर लागी, फागुन मे।"

इस उत्सव के कुछ दिन पूर्व से "लुकारी" भाजने की परपरा थी। अर्थात् बालक तथा युवक गाव से बाहर निकल कर होली-स्थल पर खड बाध कर उसमें आग लगाकर भांजते और कबीरा या जोगीडा गाते थे। दिन मे हरे बास की पिचकारी खेलते थे। समूह मे एकत्र होकर गावों मे निकलते और दरवाजे-दरवाजे होली गाते थे। अब यह परपरा क्रमश समाप्त होती जा रही है। अब होली-मिलन का आयोजन किया जाने लगा है, जहा भाग, ठंडई पी जाती है। गोझिया तो वैसे भी प्राय हर घर में बनती और खायी-खिलायी जाती है।

होलिकोत्सव और होलिकादहन की कथा "भविष्य पुराण" मे भी दी गयी है।[2]

1 कबीर वा सस्करण, पृ. - 39 एव हिन्दी साहित्य की भूमिका 6वा सस्करण पृ. - 70
2 भविष्य पुराण तथा हिदुओं के व्रत और त्योहार कुवर कन्हैया जू पृ. - 19



तीज-त्यौहार के अवसर पर लोकगायकी

[illegible] [illegible] का एक दृश्य



पर्वों त्यौहारों के अवसर पर वैरभाव सब मिट जाता है।

शिवरात्रि के अवसर पर शिवार्चन करते शिव भक्त



जनजातीय पर्व

"अपना देश भारत पर्वोत्सवो का देश है"। यदि कहा जाय तो इसमे तनिक भी अतिशयोक्ति नही है। देश भर के सभी पर्वो, उत्सवो की सूची बनायी जाय तो वर्ष का प्रत्येक दिन पर्व का दिन होगा। यही कारण है कि हमारी परपरा मे सब कुछ मगलमय है। अमगल की न तो हम कामना करते है और न कल्पना। हमारा सारा का सारा साहित्य सुखात है, इसके पीछे यही भाव छिपा है कि हम दुखो मे भी सुख का ही अनुभव करते है।

जहा तक जनजातियो का सबंध है' इनका सारा जीवन नाचने-गाने मे ही बीत जाता है। नाचना, गाना, उत्सव मनाना इनके जीवन की अनिवार्यता है। जब ये गुफाओ मे रहते थे तो शिकार के बाद उसे घेर कर वृत्त बना कर नृत्य करते थे, वह परपरा आज भी वर्तमान है और यही कारण है कि उनके सभी पर्व वृत्त या अर्द्धवृत्त बना कर ही, पूरे परिवार की हँसी-खुशी के साथ सम्पन्न होते है। बैरियर एलविन ने लिखा है कि नृत्य जनजातियों का ऐच्छिक विलास नही है बल्कि एक जीवन-शैली है, जीवन-शक्ति है, सगीत और कविता का अर्थ ही उनके जीवन का सर्वस्व है। जनजाति जो नाचती गाती है, कभी मरती नही।

सोनभद्र उत्तर प्रदेश का जनजाति बाहुल्य जनपद है। यहा न जाने कब से गोंड, खरवार, बैगा, पनिका, परहिया, भुईया, घसिया, धागर, अगरिया, कोरबा, कोल, सहारिया, पठारी, बादी आदि जनजातिया निवास करती आ रही है। इनके अपने रीति-रिवाज, तौर-तरीके तथा आचार-विचार है। ये वैसे तो होली, दीवाली, दशहरा मनाते है किन्तु इनके अतिरिक्त नाग-पचमी, कृष्ण जन्माष्टमी, तीज, कजरी, अनन्त चतुर्दशी, हलछठ, (ललहीछठ), पिडिया, जीउतिया (जीवित पुत्रिका) आदि भी मनाते है, तब भी ये करमा, सरहुल, नवरात्र, रामनवमी के पर्व बडे उत्साह से मनाते हैं।

करमा-पूजन :

करमा आदिवासियो का विश्व प्रसिद्ध त्यौहार है। जहा भी आदिवासी है, करमा अवश्य करते है। यह पर्व भाद्रपद की एकादशी, अनन्त चतुर्दशी के अवसर पर अनिवार्य रूप से मनाया जाता है जो एक अनुष्ठान के रूप में चौबीस घण्टे तक चलता है। प्रतिपदा के दिन जौ की जयी जमायी जाती है। ग्यारह दिन बाद उसे कटोरे मे रख कर अगरबत्ती, गुड, घी से उसकी पूजा करके स्त्रिया नाचती-गाती हुई करम देवता के समीप रखती हैं। करम देवता कदम्ब के वृक्ष के प्रतीक होते है जिन्हे



नदी के तट से समारोहपूर्वक लाया जाता है। दस-पाच गाव की स्त्रिया, क्वारी कन्याए जयी के साथ नृत्य करती हुयी वृक्ष के पास पहुचती है, उनमे से कोई एक बैगा की कन्या या बालक एक ही बार मे वृक्ष की डाली काटती है काटने या आगन मे चलने की अनुमति करम देव या करमा देवी से सिन्दूर टिकुली, नैवेद्य चढा कर एक दिन पूर्व माग ली गयी होती है। कटी हुई डाली जमीन पर गिरने से पूर्व हाथो हाथ लोक ली जाती है फिर उसे नाचते-गाते देव-स्थान पर लाया जाता है, उसे जमीन मे गाड कर बैगा द्वारा दारू से पूजा जाता है जिसका प्रसाद सभी पाते है और फिर उसके चारो ओर वे जो वृत्त बना कर नाचना शुरू करते है, तो चौबीस घन्टे तक नाचते ही रहते है। उनके पावो मे जख्म तक हो जाता है, अगूठा खून से लथपथ हो जाता है पर नाचना बन्द नही करते। परपरा यह भी थी कि जब किसी युवक के पाव का अगूठा किसी अविवाहिता के अगूठे से छू जाता तो वही विवाह-कार्य भी सम्पन्न हो जाता था। इनके यहा दहेज की कोई प्रथा नही है।

करमा कर्म यानी पुरुषार्थ का प्रतीक पर्व है। इसका आयोजन खरीफ की फसल बो दिए जाने के बाद उत्तम फसल होने तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिन' की मगल कामना से किया जाता है जिसकी तैयारी लगभग छ माह पूर्व से प्रारम्भ हो जाती है।

सोनभद्र मे करमा लगभग दस तरह से किया जाता है। गोडो का गोडी करमा, खरवारों का खरवारी करमा धागरों का धागरी करमा, भुईया करमा, कोरवा करमा, पठारी करमा, घसिया करमा आदि। हर्ष की बात है कि सोनभद्र के करमा को-अब राष्ट्रीय मचो पर सम्मान प्राप्त हो चुका है।

कोरवा यहा की लुप्तप्राय जनजाति है। उसका करमा नृत्य पर्व अनोखा होता था। यह प्राय नग-धडग रहने वाली जनजाति थी। इसके बारे मे डॉ. मजुमदार ने लिखा है कि एक आत्मा फसल के ऊपर तथा एक पशुओ के ऊपर तथा ऐसी अन्य अनेक आत्माए होती है जो कि वस्तुओं पर शासन करती है। इन्ही आत्माओ से प्रभावित होकर वे अपने पडोसियो, जनजातीय पुरोहितो, मुखिया तथा जनजातीय कार्यों के प्रति अपने दृष्टिकोण का निर्णय करते है। तात्पर्य यह है कि इनके ये पर्व इन्हे जीने की प्रेरणा देते है और आपसी भाई-चारा, प्रेम, सामंजस्य के साथ-साथ जीवन मे पशु-पक्षियों, वृक्षो, वनस्पतियो, नदी-नालो तक की उपयोगिता को अगीकार करते हैं।

करमा पूजा मे गीतो का बडा महत्व है। हर अवसर के अलग-अलग गीत निर्धारित है। इन गीतो के साथ उनके जीवन की सम्वेदनाए और रागात्मक संबध जुडे होते है। यहा कुछ पक्तिया



प्रस्तुत है -

"गउवा के गोबरे हो अगना लिपवले,

गाडे करम के डार।

बालकइ देवे हो दूध भात खोरवा।

चलइ बहिन करमा सेवे।

पक्तियो का भाव स्पष्ट है। करमा की तैयारी मे गोबर से आगन लीपा जा रहा है और बालक को खोरा कटोरे मे दूध-भात खाने को दिया जा रहा है।

जइया-पूजा .

करमा के बाद जनजातीय पर्वो में जइया पूजा का बहुत बाहुल्य है। नवरात्र के अवसर पर जइया-पूजा की तैयारी एक माह पहले से शुरू हो जाती है। जई जमायी जाती है। दुर्गाष्टमी के दिन कई गांव-गाव ही क्या उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश, बिहार तक के आदिवासी लम्बे-लम्बे जुलूस मे देवी ज्वालामुखी, बसरा, मइहर की जय-जयकार करते हुए ढोल, मजीरा मादल, छड आदि वाद्यो के साथ प्राय सिर मुडा कर जौ की जमी हुई जइया को कसोरे मे सजाकर धूप दीप के साथ प्रज्जवलित अग्नि के कसोरे को हथेली पर रखे नाचते-गाते जब वे देवी-धाम मे पहुचते है तो अनोखा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

इस समारोह मे अधिकतर अगरिया जनजाति के लोग उपस्थित होते है। देवी-धाम मे पहुंच कर देवी को प्रसन्न करने के लिए ये सौ कदम पहले ही जमीन पर लोट जाते है और घिसटते हुए देवी के पास तक पहुचते हैं, तारीफ यह है कि इनकी हथेली से प्रज्ज्वलित अग्नि की ज्वाला या जइया जमीन पर नही गिरती। इतना ही नहीं, लोहे के बने लगभग एक मीटर लबे तीखे तीर के समान 'बाना" (त्रिशूल) को जीभ में घुसेड लेते है और उनका मानना है कि देवी-कृपा से रक्त की एक बूद भी दिखलाई नही पडती। बैगा लोहे के बने गुटकेदार गुरदम से बार-बार पीठ, बाह पर प्रहार करते है, लेकिन वे घायल नही होते।

जइया-पूजा का यह समारोह मुख्य रूप से दुर्गाष्टमी और नौमी, दोनो दिन, दोनो नवरात्र को चलता हैं। स्त्रिया सम्मिलित नही होती पर घर पर पूजा, गीत, गायन करती है। यहा कुछ पक्तिया



प्रस्तुत है जिनसे पूजा और पर्यावरण पर प्रकाश पडता है

"गइया क घियना अमवा क लकडी

धुअना अकासे जाइ हो माई।।

ओही मे आवइनी माई मोर काली,

घमसी लगावे दरबार हो माई।।

यानी माँ के दरबार में गाय के घी और आम की लकडी का शाकला किया गया है जिसका धुआ आकाश तक पहुच रहा है। मान्यता है कि इससे वर्षा होती है।

डोमकच-पर्व :

दशहरा, दीवाली, होली आदि अवसरो पर घसिया तथा अन्य जाजातियो द्वारा डोमकच या डमकच का आयोजन किया जाता है। इन समारोह मे स्त्री-पुरुष, बालक, वृद्ध सभी सम्मिलित होते है। विवाह के अवसर पर भी इस समारोह का आयोजन किया जाता है। इस अवसर पर गाव के लोग किसी एक स्थान पर एकत्र होते है। मादल की थाप पर वे वृत्त या अर्द्धवृत्त बना लेते है। स्त्रिया भी हाथ मे हाथ जोड कर खडी होती है और गीत की पक्तिया गुनगुनाने लगती है। इतने मे पुरुष उन्हें अपने घेरे के अदर ले लेते हैं, फिर वे सभी झूमकर नाचना-गाना प्रारम्भ कर देते है। उछलते-कूदते, कलाबाजी करते, पीछे मुडकर वे जमीन से पैसा या सुई जीभ से उठाने का अभिनय करते है। इसी बीच दूल्हा के रूप मे वर बाबा आते है जिन्हें चूमकर स्त्रिया अपने कन्धे पर उठा लेती है और फिर नाचती-गाती बाहर चली जाती है। इनका यह समारोह चार-पाच घटे तक चलता है। मादल, डफला, निशान, बासुरी, शहनाई आदि वाद्यो से उनके संगीत स्वर के साथ आकाश गूज उठता है। इस अवसर पर घर को साफ-सुथरा करके सजाया जाता है। सभी नया वस्त्र धारण करने का प्रयास करते हैं। डोमकच पर्व पर गाये जाने वाले अनेक गीत होते है, यहा दो पक्तिया प्रस्तुत है

डाग डोले बशी डोले डोलत है तलैया,

सात खण्डा मच्छर मारे, केउना रचवैया।।

छेरता-पर्व :

आदिवासियो का एक अन्य पर्व है छेरता, जिसे कही-कही शैला भी कहा जाता है। उत्तर-प्रदेश



के अलावा बिहार और मध्य प्रदेश मे भी यह पूर्ण हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। यह विशेष रूप से युवको का समारोह होता है। गाव, पास-पडोस के युवक साफ-सुथरे कपडे पहन कर-पगडी या पत्तो की टोपी सिर पर रख कर, कमर मे मोर-पख बाध कर, हाथ मे दो-दो फीट के डन्डे लेकर, पावो मे कडे या घुघुरू बाध कर मादल की थाप पर हू-हू की आवाज करते हुए किसी मैदान मे निकल आते है। डन्डा उछाल कर या उसे भोकते हुए कू-कू की आवाज करते जब आगे बढते या दौडते है तो भय लगता है। ये शेर भालू, चीता का मुखौटा भी लगा लेते हैं। ये समूह मे गाव के पैसे वालो के पास पहुच कर नगई करके पैसा बटोरते हैं और उससे छानते-खोटते है। यह आयोजन दो दिनो का होता है जो पूरे तौर पर मौज-मस्ती मे बीतता है।

इस आयोजन का प्रारम्भ शिकार मिलने की खुशी मे किया गया था। इसे हकवा विधि भी कह सकते है। जानवरो का शिकार गाव के युवक डन्डा लेकर हकवा करके करते है। शिकार मिल जाने पर उसके चारो ओर नाच कर खुशी मनाते थे। यह प्रथा अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही है।

सुग्गा-समारोह :

इसी तरह एक और सुग्गा समारोह का आयोजन भी किया जाता है। आदिवासी जीवन मे पशु-पक्षियो का बडा महत्व है। सुग्गा यानी तोता उडा कर यह पर्व मनाया जाता है। हरे-पीले-लाल रंग के काठ के बने तोतो को सुन्दर ढंग से सजा कर किसी मिट्टी के पात्र मे धान की बालियो के सग कोई सुन्दरी युवती अपने सिर पर धारण करती है। अन्य स्त्रिया टोली बना कर वृत्त के अन्दर उसे घेर लेती है। फिर नाचते-गाते गाव मे जाती और पैसा या अन्न प्राप्त करके मौज-मस्ती करती है।

पहले घोतुल गृह या युवागृह अथवा घुमकुरिया की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार गाव के बाहर कोई एक स्थान होता था जिसमें रात्रि विश्राम तथा मनोरंजन के लिए युवको-युवतियो का पहुंचना अनिवार्य होता था। कालान्तर मे इसमे कुछ दोष आ गये। मर्यादाए टूटने लगी तो यह प्रथा समाप्त हो गयी। वर्ना इन जनजातियो का हर दिन पर्व का दिन होता था और कभी इनका जीवन नीरस नही होता था। लेकिन समय और समाज मे बदलाव के कारण उनकी यह मस्ती भी उनसे छिन गयी।



अन्य पर्वोत्सव :

जनजातियो क कुछ और पर्व भी हैं- जैसे मुण्डा या धागर 'मागे परब' पूस मास की पूर्णिमा को पुरखो की पूजा कर के मनाते है। होली के अवसर पर 'फागो परब', रेड के पेड को भूसा से ढक कर उसमे आग लगा कर मनाते है। चैतमास मे बा या 'सरहुल परब' साल वृक्ष के फूल को प्रतीक मान कर किया जाता है।

इनके प्रत्येक पर्वोत्सव धर्म की भावना से जुडे हुए है। ये वन में वनस्पति की पूजा, गाव मे गवहेर की पूजा, घमसान की पूजा, पहाड पर दुलहादेव की पूजा, बडादेव की पूजा विभिन्न अवसरो पर करते है। इन अवसरो पर भी नाचने-गाने का आयोजन किया जाता है जिसके कारण उत्सव मे चार चाद लग जाते है।

जनजातियो के सभी पर्व वन्य-जीवन, पशु-पक्षी, नदी-तालाब झरने आदि से जुडे हुए है। जनसख्या वृद्धि के कारण वन कटते जा रहे है, वर्षा कम होती जा रही है। वन्य जीवन समाप्त होते जा रहे है। अत उनके मौज-मस्ती के दिन भी समाप्त होते जा रहे हैं। महगाई की मार के कारण पर्वों का आनन्द फीका पडता जा रहा है।[1]

1. करमा डॉ अर्जुन दास केसरी, लोक रुचि, प्रकाशन, राबर्टसगज।



अन्य धार्मिक पर्व

बुद्धपूर्णिमा :

कार्तिक पूर्णिमा गुरु नानक देव जी महाराज के आविर्भाव के कारण धन्य हो गयी, उसी प्रकार बैशाख पूर्णिमा की तिथि भी गौतम बुद्ध के अवतार के कारण अविस्मरणीय हो गयी है। गौतम बुद्ध ने ससार को माया से मुक्ति के लिए महाभिनिष्क्रमण पथ का वरण किया और वर्षो की कठिन तपस्या के उपरान्त जब उन्हे बुद्ध तत्व की प्राप्ति हुई जो जगत् के कल्याण का कारण बनी। राजकुमार होते हुए भी आपको सासारिक भोग-वासना छू तक नही गयी। अपने एक मात्र पुत्र राहुल तथा पत्नी यशोधरा का सोते मे त्याग कर उन्तीस वर्ष की अवस्था मे ज्ञान प्राप्त कर लिया और मध्यम मार्ग अपनाकर उपदेश देने लगे। पैतालिस वर्षो तक आप निरतर उपदेशक का कार्य करके लगभग पूरे भारतवर्ष मे बौद्ध धर्म की जीवनोपयोगी शिक्षाओ के द्वारा जन-जन मे बोद्ध धर्म के प्रति आपने आस्था उत्पन्न कर दी। हर जगह बुद्ध शरण गच्छामि, धर्मं शरण गच्छामि तथा सघ शरण गच्छामि का नारा गूज उठा। अष्टाग योग मार्ग का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। आपके लाखो-लाख लोग अनुयायी और भक्त बन गये। अष्टाग योग मार्ग है- (1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् सकल्प, (3) सम्यक वाक, (4) सम्यक कर्म, (5) सम्यक् आजीविका (6) सम्यक् स्मृति (7) सम्यक् व्यायाम और (8) सम्यक् समाधि। ये सभी सबके लिए- साधु हों चाहे गृहस्थ, अनिवार्य है। इसमे भोग-विलास से पृथक जितेन्द्रियत्व को महत्व प्रदान किया गया। आपने बताया कि मार्गों मे अष्टाक मार्ग श्रेष्ठ है, सत्यो मे चार पद (चार आर्य सत्य) श्रेष्ठ है, धर्मों मे वैराग्य श्रेष्ठ है, द्विपदो मनुष्यो मे चतुष्मान (ज्ञाननेत्रधारी) श्रेष्ठ है-

भग्गानष्टागको सेट्ठो सच्चान चतुरो पदा,
विरोगो सेट्ठो धम्मानं द्विपदानश्च चव-खुमा।।[1]

बौद्ध धर्म मे दु'खो से निवृत्ति के लिए पचशील की भी स्थापना की गयी, जो इस प्रकार है- (1) प्राणतिपात (2) अदत्तादान (3) मद्यपान-निषेध (4) ब्रह्मचर्य पालन। बुद्ध ने शील को प्रमुख गुण बताया है और कहा है कि दु खशील एव एकाग्रता रहित के सौ वर्ष के जीवन से शीलवान और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है-

यो च वरससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो,
एकाह जीवित सेय्यो शीलवन्तस्य झायिनो।।

1 धम्मपद से उद्धृत



गौतम बुद्ध ने "अहिसा" परमो धर्म के सिद्धान्त को सर्वोपरि बताया जिसका सार्वभौमिक महत्व समझा गया। परिणाम यह हुआ कि यह धर्म कालातर मे न केवल भारत मे, अपितु तिब्बत, चीन, जापान आदि देश मे भी इस धर्म ने अपना प्रभुत्व जमा लिया। अशोक जैसे प्रतापी राजा ने अपने समस्त अनुयायियो के साथ इस धर्म को भयकर नर-सहार के बाद स्वीकार किया। उसने बौद्ध स्तम्भ स्थान-स्थान पर तैयार कराये और उन पर बौद्ध धर्म की शिक्षाएं अकित करायी। बौद्धों का सबसे बडा धर्मग्रंथ "त्रिपिटक" है। इसमे सभी सिद्धातो का निरूपण किया गया है। इसके तथा "धम्मपद" के अश प्रकाशित किये गये, जिससे लोगो ने इस धर्म के रहस्यों को समझा। काशी के समीप सारनाथ को प्रचार-प्रसार और उपदेश का केन्द्र बनाया गया। सघो की स्थापना की गयी।

गौतम बुद्ध ने कुछ शाश्वत् मूल्यो की स्थापना पर बल दिया था और कहा था कि बैर से बैर शात नही हो सकता, उसके लिए मैत्री जरूरी है-

नहि वैरेण वैराणि साम्यन्तीह कुदाचन,

अवैरेण च साम्यान्ति एष धर्मो सनातन।।

इसका परिणाम यह हुआ कि "बहुजन हिताय,"बहुजन सुखाय" का मार्ग प्रशस्त हुआ। जन समुदाय आपके साथ हो गया और यह धर्म अनीश्वरवादी नास्तिक होते हुए भी मानवतावादी सिद्धातों के कारण विस्तार पाता गया। इसी कारण शकराचार्य ने गौतम बुद्ध के लिए "योगिना चक्रवर्ती" का विशेषण प्रदान किया था।

यह धर्म, सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य और चरित्र-शुद्धि की नीव पर खडा होने के कारण चरमोत्कर्ष पर पहुचा था, किन्तु कालान्तर मे जब बौद्ध मठो-बिहारो मे चरित्र-पतन की घटनाए घटने लगी तो यह धर्म धूमिल पडने लगा। इस धर्म का प्रचार-प्रसार आदिम जातियो, कमजोर वर्ग के लोगो मे खूब हुआ। भारतीय सविधान के निर्माता डॉ भीमराव अम्बेडकर भी इसके अनुयायी थे। महापण्डित राहुल साकृत्यायन इसके समर्थक थे। अत॰ स्वतत्रता प्राप्ति के बाद से इस धर्म की पुनर्स्थापना के लक्षण दिखलाई पडने लगे है। अब इस पर्व पर जुलूस निकाले जाते है। गोष्ठिया आयोजित की जाती है। बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो का प्रचार-प्रसार किया जाता है। गौतम बुद्ध के उपदेश जनता, जनतत्र और मानवता के लिए अनिवार्य है। उन्हें अपनाने की जरूरत है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि गौतम बुद्ध युग-पुरुष है और उनके सन्देश मानवता के लिए कल्याणकारी है।

भगवान बुद्ध का एक नाम तथागत भी है। तथागत ने ब्राह्मणो को उपदेश देते हुए कहा था- 'हे ब्राह्मण क्या तुम जानते हो कि चाण्डाल किसे कहते है ? चाण्डाल के गुण, कर्म, स्वभाव कौन



से होते है ? तुम उसे चाण्डाल समझना जो जीवन मे प्रतिदिन क्रोध, रोष, दम्भ, कपट एव पाप व्यापार का व्यवहार करता है तथा जिसकी बुद्धि विकृत हो गयी है और जो मायावी है। चाहे वह ब्राह्मण हो या शूद्र। जो प्राणियो की हिसा करता है जिसके हृदय मे प्राणियो के निमित्त दया का भाव नही है- वही चाण्डाल है।

भोजपुरी भाषी जनपदो मे कुशीनगर से काशी (पावा से सारनाथ) तक बौद्धधर्म का ही बोलबाला था। लुम्बिनी मे गौतम बुद्ध पैदा हुए थे। बोध गया मे गौतम सिद्धार्थ से बुद्ध हुए। सारनाथ मे उपदेश दिया जो हृदयस्थल बना, श्रावस्ती मे उन्होंने अपने जीवन के 24 वर्ष व्यतीत किये, कुशीनगर मे उनका परिनिर्वाण हुआ।

महावीर जयन्ती :

हिन्दू-धर्म जितना व्यापक और विशाल है उतना अन्य नही। यह आदि सनातन है। इसकी शाखाए चाहे जितनी हो, किन्तु उद्देश्य अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष की प्राप्ति ही है। भारतीय धर्मों मे बौद्ध और जैन धर्म ने भी भारतीय जनता को अनुप्राणित किया है। महावीर स्वामी जैन धर्म के प्रवर्तक है जिन्हे भगवान माना गया। ये वैशाली के द्वितीय भाग कुण्डपुर मे सिद्धार्थ की रानी त्रिशाला के गर्भ से चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को पैदा हुए थे। इनके माता-पिता तीर्थंकर पार्श्वनाथ के अनुयायी थे। एक बार निशीथ मे त्रिशाला ने स्वप्न मे हाथी, बैल, सिह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्र, सूर्य, ध्वज, कलश, पद्म, सरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और अग्नि इन चौदह रत्नो को देखा। स्वप्न-दर्शनान्तर त्रिशाला तत्काल जग गयी और राजा सिद्धार्थ से उसने अपने सपने सुनाए। राजा ने देवज्ञो को बुलाकर स्वप्न फल पूछे। देवज्ञो ने भावी पुत्र के चक्रवर्ती या तीर्थंकर होने की घोषणा की। जन्म के बारहवे दिन आपको वर्द्धमान नाम से अभिहित किया गया। अत्यन्त परिश्रमी होने के कारण उन्हे श्रमण तथा बलिष्ठ होने के कारण महावीर भी कहा जाने लगा। बीस वर्ष की अवस्था मे उनका विवाह यशोदा नामक अत्यन्त लावण्यवती कन्या से हुआ, तथापि वे भोग-विलास से विरक्त ही रहा करते थे। अट्ठाइस वर्ष की अवस्था मे माता-पिता के दिवगत हो जाने पर वे प्रवज्ञा के लिए आकुल हो उठे और कालान्तर मे मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी को उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे अपना राजश्री वस्त्रावरण त्यागकर अनागरिकत्व को प्राप्त किया-

णो चेविमेण व त्थेण षिहिस्सामि तसि हमन्ते,
से पारये आवकहाए, एव रव अगुधाम्मिय तस्स।

- आचारोग सूत्र



महावीर स्वामी ध्यान मे लीन रहा करते थे। कोई कितना-ही कठोर वचन उनके प्रति बोलता उन पर कुछ भी असर नही होता। कुछ लोग मारते-पीटते भी, पर वे तथावत् रहते। साप-बिच्छू उनके शरीर पर लोटते रहते, जानवर सूघ कर वापस चले जाते। उन्होने अहिसा को सबसे बडा पुण्य और स्त्रियो को पाप का कारण मान लिया था। प्रमोद उनकी दृष्टि मे साधना मे बाधक तत्व था। वे निद्रा का त्याग कर चुके थे, सदा उत्तम अनुष्ठान मे लगे रहते थे। उन्हे सर्पो ने सताया, नकुलो ने पीडा पहुचायी, श्मशान मे भी गृधो, श्रृगालो ने यातनाए दी। सुगन्ध, दुर्गन्ध, कष्ट से परे उन्होने अपने को बना लिया था। उन्हे कुत्ते से कटवाया गया। लाठी-डडे, भाले से उन पर प्रहार किया गया। ध्यानावस्था होने पर धकेल दिया गया, लेकिन उन पर कुछ भी प्रभाव नही पडता था। वे तो निवृत्ति के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। वे उत्तम ज्ञान, उत्तम दर्शन, उत्तम चरित्र और उत्तम विचार के साथ बारह वर्षो तक कठोर तपस्या और ध्यान मे रत रहे। पश्चात् अर्हत, जिन सर्वज्ञ और समदर्शी बन कर धर्म-प्रचार मे प्रवृत्ति हुए।

महावीर के पूर्वगामी पार्श्वनाथ ने निम्नलिखित चार सिद्धान्तो की स्थापना की थी- (1) सत्य, (2) अपरिग्रह, (3) अहिंसा (4) अस्तेय (5) चोरी न करना, किन्तु महावीर स्वामी ने उसमे ब्रह्मचर्य का पाचवा सिद्धात सम्मिलित किया। फलत· अस्पृहा को वस्त्र विहीनता की सीमा तक और धर्माचरण को कक्षा तक पहुचा दिया, जो एक बडी उपलब्धि थी।

बौद्ध और जैन धर्म लगभग समानान्तर है। ईसा से 567 वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध का और 540 वर्ष पूर्व महाबीर स्वामी का जन्म माना जाता है। दोनो के सिद्धान्त लगभग एक थे, तब भी वेद-विरोधी विचारधाराओ के कारण ये दोनो धर्म बहुत दिनो तक ग्राह्य नही रह सके। दिगम्बरता के कारण कुछ विकृतिया भी आयी जिनके चलते ये धर्म धूमिल पडते गये। तथापि चौथी शताब्दी के अंत तक इसके अनुयायी दक्षिण तक पहुच गये थे। चन्द्रगुप्त मौर्य को भी इसके अनुयायियो मे से एक माना जाता है। बीच की लम्बी अवधि तक यह धर्म अप्रतिष्ठित रहा, किंतु अब क्रमश इसका प्रचार-प्रसार बढ रहा है। महावीर स्वामी की जयन्तिया पूरे देश मे मनायी जाने लगी है। इस दिन सार्वजनिक अवकाश रहता है। धर्मोपदेश किये जाते हे। जुलूस निकाले जाते है। गोष्ठिया आयोजित की जाती है। जहा तक भोजपुरी भाषी जनपदो का सवाल है, यहा हरियाणा, दिल्ली से आये जैन व्यापारी इसके प्रचार-प्रसार मे अपना योगदान करने लगे है।



सिख-पर्व

सिख धर्म (मत) का इतिहास कुल पाच सौ वर्षो के भीतर का है जब श्री गुरु नानक देव जी महाराज का आविर्भाव हुआ। उस समय देश अनेक जातियो, कुसस्कारो, धार्मिक-सामाजिक रूढियो छुआछूत की भावनाओ मे विभक्त हो रहा था। गुरु नानक देव जी ने इनसे मुक्ति पाने के लिए मानवतावादी विचारो के प्रचार-प्रसार का व्रत लिया और मक्का मदीना से लेकर देश के कोने-कोने की यात्राए की। इसके बाद गुरुओ की एक परपरा चल पडी जिसके अतिम दसवे गुरु गोविन्द सिह को घोषित किया-

आज्ञा भयी अकाल की, तभी चलायो पथ।

सब सिक्खो को हुकुम है गुरु मानियो ग्रथ।।

यह ग्रथ "गुरुग्रथ साहिब" है जिसमे सभी गुरुओ सहित सतो-महात्माओ, कवियो की वाणियो का सग्रह किया गया है। इसी समय खालसा की स्थापना की गयी। अमृत छकाया गया। तभी से सिख मतावलबी सभी गुरुओ का जन्मदिन तथा बैशाखी का पर्व धूमधाम से मनाते है जिसमे हर जाति, धर्म, सम्प्रदाय के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते है।

गुरु-पर्व :

वैसे तो सभी दसो गुरुओ का जन्मदिन पर्व है, तब भी गुरुनानक देव जी, गुरु तेग बहादुर सिह और गुरु गोविन्द सिह जी महाराज का जन्मोत्सव बडे उत्साह से मनाया जाता है। इस दिन गुरुद्वारा सजाया जाता है, अखण्ड पाठ होता है। भजन-कीर्तन का आयोजन किया जाता है। लगर लगता है। प्रवचन होता है। जुलूस निकाला जाता है। गुरु नानक देव जी के जन्म-दिन पर प्रात काली की जाती है जिसमे स्त्री-पुरुष, बच्चे सभी भोर ही मे गुरुद्वारे आकर नाचते-गाते, पाठ करते जुलूस निकालते है जो लगभग दस दिन तक चलता है।

गुरुपर्व कार्तिक शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को मनाया जाता है, जिसमे सभी सच्ची भक्ति, नाम-जप, सेवा, त्याग, बलिदान, कर्त्तव्य-पालन, स्नेह, दया, करुणा, सत्याचरण, परोपकार आदि का व्रत लेते है। गुरु नानक देव जी की शिक्षाओ की चर्चा होती है। उनके अनुसरण पर बल दिया जाता है। उस वाहि गुरु की आराधना की जाती है जिसे माता-पिता का दर्जा प्राप्त है। वह कुदरत के रूप मे सर्व



व्याप्त है-

बलिहारी कुदरत वसिया।।

तेरा अत न जाई लखिया।।[1]

यह वाहिगुरु सर्व व्यापक तथा असीम है। वह सत्य, अद्वितीय, निर्भय, निरवैर, अकाल पुरुष और प्रसादस्वरूप है। गुरुग्रथ साहिब की आरंभिक वाणी है-

ॐ सतिनाम करता पुरुसु निरमउ निरवैर

अकाल मूरति अजूनी सैभ गुर प्रसादि।।[2]

गुरुग्रथ साहिब का मूलमत्र है "नाम"। नाम ही सुख का आधार और "नाम" के प्रति उदासी दु खो का कारण है-

नरकि परहि ते मानई,

जोहरि नाम उदास।[3]

सिख मत समन्वयवादी दर्शन है। नानक निरकारी के कुल दस अवतार बताये गये है जिनमे प्रथम अवतार मे ही इनके उपदेशो का हिन्दू-मुसलमान दोनो पर बडा अच्छा प्रभाव पडा और मुसलमानो का दिल-दिमाग लगभग बदल ही गया। अनेक मुसलमान उनके अनुयायी हो गये। सुख-शाति का वातावरण छा गया।[4]

गुरु नानक देव जी का आविर्भाव एक प्रकाश के रूप मे हुआ था। "सिख धर्म प्रश्न और उत्तर" मे डॉ. गुरुबख्श सिह ने लिखा है कि गुरु नानक देव जी ने मध्य पूर्वी देशो, मक्का, मदीना और बगदाद मे जाकर मुसलमान विद्वानो से वार्तालाप की। जब उनसे ये पूछा गया कि "हिन्दू बडा है या मुसलमान" तो गुरु जी ने बताया- "केवल अच्छे गुण ही व्यक्ति को शक्ति दे सकते है। शुभ गुणो के अभाव मे हर एक व्यक्ति को पछताना पडेगा, चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो"-

पुछण खोल किताब, नू हिन्दू बडा कि मुसलमानोई

बाबा आखे हाजीया शुभ अमला बाझों दोनो रोई।।[5]

1. श्री गुरु ग्रथ साहिब - पृ. 469
2 श्री गुरु ग्रथ साहिब - पृ. 1
3. श्री गुरु ग्रथ साहिब - पृ 1369
4. सिख धर्म दर्शन - डॉ. अर्जुन दास केसरी - पृ. 10
5. पउडी 32-36, वार 33-भाइ गुरदास जी सिख धर्म प्रश्न और उत्तर रात बरवासिंघ - पृ. 37



गुरु नानक देव जी के बाद गुरु अगददेव का आविर्भाव हुआ जिन्होने आस्था, विश्वास, वचन के प्रति प्रेम, त्याग, दया, सहनशीलता, कर्त्तव्यनिष्ठा, सहनशीलता, सत्य, अहिसा आदि गुणो को जीवन और धर्म में उतारने पर बल दिया और गुरुनानक देव जी के बताये मार्ग पर चलने का सभी से आग्रह किया।

श्री गुरु अमरदास जी का आविर्भाव तृतीय गुरु के रूप मे बैशाख सुदी 14स. 1536 को हुआ जिन्होने पूर्व के दोनो गुरुओ के बताये मार्ग के अनुसरण पर बल देते हुए कहा। सच्ची भक्ति, बडों के प्रति आदर, निष्काम सेवा, लगन, स्वार्थ का त्याग, सहनशीलता, सादाजीवन-उच्चविचार, नम्रता, आचरण की पवित्रता आदि गुणो द्वारा ही व्यक्ति महान बन सकता है। थोथा अहम, दिखावटी भक्ति, मिथ्या, अभिमान से मानव पतन के गर्त मे जायेगा।[1]

गुरु रामदास जी उर्फ जेठा का आविर्भाव चौथे गुरु के रूप मे लाहौर के शहर मे सं 1591 मे हुआ। इन्होंने भी गुरु परंपरा को आगे बढाते हुए जाति-पाति, छुआछूत, अमीर-गरीब, ऊच-नीच की भावना को तनिक भी स्थान नही दिया और दाढी को सेवा का प्रतीक माना फिर अपने छोटे सुपुत्र गुरु अर्जुन देव जी को गुरुवाई दे दी-

रामदास गुरु जग तारन को,

गुरु जोति सो अर्जुन पाहि धरी।[2]

श्री गुरु अर्जुन देव जी पंचम बादशाह रामदास जी के चौथे सुपुत्र थे। आपका जन्म बैशाख वदी 7 सं. 1620 मे हुआ था। गुरु अर्जुनदेव जी ने ज्येष्ठ पुत्र के विरोध के कारण अमृत सरोवर मे स्वर्ण मदिर का निर्माण सिखो की कमाई का दसवा भाग लेकर बनवाया था जिसमे हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सभी को बिना रोक-टोक प्रवेश की अनुमति थी, जिसका मुसलमानो ने विरोध किया। फरियाद अकबर के पास पहुची। मदिर मे गुरुग्रथ साहिब को भी रखा था, अकबर सम्राट ने गुरुग्रथ साहिब को खोलकर देखा तो निकला-

कोई बोलै राम राम, कोई खुदाय।

कोई सेवै गुसइयां, कोई अलाए।।

कारण करम करीम, किरपाधारि रहीम। आदि

अकबर जहां कही भी खोलता, ऐसे ही समन्वयात्मक पद मिलते, जिससे प्रभावित होकर उसने

1 सिख धर्म दर्शन : डॉ. अर्जुन दास केसरी पृ. 13

2 वही पृ. 14



500 अशर्फिया चढाकर बुड्ढा ग्रथी को माथा टेक लिया। अकबर के बाद जहागीर गद्दी का अधिकारी बना तो उसने बडा विरोध किया, गुरुजी को सताया और अत मे उन्हे शहीद होना पडा। इस प्रकार उनकी उदारता, त्याग, सहनशीलता, दृष्टि की व्यापकता, समानता, सहिष्णुता, बलिदान, सहनशील स्वभाव के कारण सिख मत की स्थापना हुई।

श्री गुरु हरिगोविन्द सिह जी अर्जुन देव जी के धर्म के लिए मर-मिटने वाले पुत्र थे। मुसलमानो के निरतर विरोध के कारण तग आकर उन्होने सिखों को खड्ग धारण करने की आज्ञा दी जिससे धर्म की रक्षा हो सकी। आपको स्वय शाहजहा से तीन बार युद्ध करना पडा था। इस प्रकार आपने अन्याय के विरुद्ध सघर्ष की प्रेरणा दी, धर्म की रक्षा के लिए बलिदान को महत्व प्रदान कर अपने पोते हरि राय जी को गुरुवाई सौपी और स्वय चल बसे।

श्री गुरु हरिराय जी परम दयालु तथा शात स्वभाव के थे। वन मे घूमते हुए एक बार उनके अगरखा से लगकर एक फूल गिर गया था जिससे दु खी होकर उन्होने अपने दोनो हाथो से अगरखा पकड कर चलना प्रारभ कर दिया था। आपका अगरखा 100 कलगी का होता था। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि आप फूलो को भी कष्ट देना नही चाहते थे। आपने अपनी अमृतमयी वाणी से देश के प्राय हर कोने के लोगो को लाभान्वित किया।[1]

श्री गुरु हरिकृष्ण जी गुरु हरिराय जी के बाद गद्दी पर बैठे जब उनकी अवस्था मात्र पाच वर्ष की थी। ये बडे अध्यवसायी, विद्वान तथा प्रतिभाशाली थे। आपने औरगजेब का दिल-दिमाग अपने बुद्धिबल से बदल दिया था जो नकल पर असल की, अज्ञान पर ज्ञान की, राजधर्म पर मानवतावादी धर्म की विजय थी। इसके बाद गुरु तेग बहादुर जी को गुरुवाई मिली। आपने सतलज के पास आनदपुर नामक नगर बसाया। अनेक तालाब और कुए खुदवाये। धर्म-प्रचार किया। "गुरुग्रथ साहिब" की प्रतिया हाथ से लिखी और रोहतास तथा अहरौरा (मिर्जापुर) के गुरुद्वारो मे उन्हे रखवाया जो आज तक उनके हस्ताक्षर के साथ वर्तमान है। इस धर्म प्रचार के चलते औरगजेब ने उनका कत्ल करवा दिया लेकिन उनके मुख से "सी" तक नही निकला जिसके बारे मे गुरु गोविन्दसिह जी ने लिखा है-

साधन हेत इती जिन करी, सीस दिया पर सी न उचरी,
धर्महेत साका जिन किया, सीस दिया पर सिरढ न किया।।[2]

1 सिख धर्म दर्शन डॉ अर्जुन दास केसरी पृ. 16-17
2 वही पृ 19



इसके बाद दसवे और अतिम गुरु के रूप मे श्री गोविद सिह जी ने गुरुवाई पायी। ये गुरु तेग बहादुर सिह के सुपुत्र थे। आपने आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य पर बल दिया। "विचित्र नाटक नामक कृति की रचना की। "खालसा' की स्थापना की। धर्म की रक्षा का भार पच-प्यारो पर छोड दिया। आपने ललकारते हुए कहा था-

एक सिख को एक लाख से लडाऊ।

तब गुरुगोविन्द सिह नाम कहाऊ।।

आपने धर्म के दस सिद्धान्त स्थिर किये जिनका निचोड इस प्रकार है-

गुरुवर जन्म तुम्हारे होवे, पिछले जाति वरन सब खोये।

चरन वरन के एको भाई, धरम खालसा पदवी पाई।

हिन्दू तुरक ते आहि नियारा, सिह धर्म अब तुमने धारा।

राखहु कच्छ, कंस, किरपाना, सिह नाम हो यही निशाना।

यही से गुरु परपरा समाप्त हो गयी और गुरु ग्रथ साहिब को ही गुरु मान लिया गया-

आज्ञा भई अकाल की, तभी चलायो पथ।

सब सिक्खन को हुकुम है, गुरु मानिए ग्रथ।।

पटना मे गुरु गोविन्द सिह जी महाराज के नाम का बना गुरुद्वारा एक महत्वपूर्ण स्मृति-चिहन है जिसे सिख-तीर्थ का दर्जा प्राप्त है। इसके बाद प्राय हर बडे नगर, कस्बो मे गुरुद्वारो का निर्माण कराया गया। अमृतसर, दिल्ली, पटना, काशी, प्रयाग, मुम्बई, कलकत्ता आदि सभी स्थानो पर, जहा कही भी सिख अथवा सिख मतानुयायी पहुचे, गुरुद्वारे बन गये और उनमे भजन, कीर्तन, गुरुओ के जन्मोत्सव, खालसा उत्सव, आदि साल-ब-साल मनाये जाने लगे। आज पूर्वांचल सहित भोजपुरी भाषी प्रत्येक जनपद मे गुरु-पर्व और उत्सव मनाने की परपरा चल पडी है जिससे कोटि-कोटि जनता लाभान्वित हो रही है।



मुसलिम-पर्व

इदुज्जुहा :

इदुज्जुहा का दूसरा नाम बकरीद है। बकरीद बकरा + ईद से बना है जिसका अर्थ है बकरा का ईद। इस दिन बकरा काटा जाता है और उसका मास खाया जाता है। इस दिन का त्यौहार मनाने के लिए विदेश भर मे करोडो बकरे काटे जाते है। प्राय उन बकरो को काटा जाता है जिन्हे बडे लाड-प्यार से साल-दो साल से पाल-पोस कर बडा किया जाता है। बकरे के अलावा दुम्बे, भैसे तथा भेडे भी भारी सख्या मे काटी अथवा कुर्बान की जाती है। इसका तात्पर्य है अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु या पशु के प्रति मोह का त्याग कर देना। इसे जनहित का कार्य कहा जाता है। इसका दूसरा उद्देश्य बताया जाता है कि "कयामत (प्रलय) के दिन प्रत्येक मुसलमान को जन्नत मे प्रवेश करने के लिए बाल से बारीक तथा तलवार की धार से भी तेज पुल (सरात) पार करना पडता है। जो व्यक्ति इस पुल को पार कर लेता है वह जन्नत (स्वर्ग) मे चला जाता है और जो गिर जाता है वह नरक मे चला जाता है। जिन जानवरो की हम कुर्बानी करते है, वे पुल को पार करने मे सहायता करते है।"[1]

इस सबध मे एक धार्मिक प्रसग बताया जाता है, वह यह कि हजरत इब्राहिम को खुदा ने स्वप्न मे आदेश दिया कि वे अपने पुत्र को खुदा की राह मे कुर्बान करे। कई दिन लगातार यह स्वप्न देखने पर हजरत इब्राहिम अपने पुत्र का बलिदान करने पर तत्पर हो गये। आख पर पट्टी बाध कर पुत्र पर छुरा चलाया, मगर जब आख खुली तो पुत्र को सुरक्षित पाया तथा देखा कि उस पुत्र के स्थान पर वहा एक दुम्बा हलाल पडा था। अब प्रश्न उठता है कि जब खुदा और पैगम्बर के मध्य सन्देश वाहक का कार्य "जिब्राइल" नामक फरिश्ता करता है तो खुदा ने उन्हें क्यो स्वयं आदेश दिया ? लेकिन मुसलिम धर्म मे तर्क के लिए कोई स्थान नही है। जो परपरा से चला आ रहा है, वही होगा। कुछ लोग इस घटना को इस प्रकार व्याख्यांकित करते है-

हजरत इब्राहिम की दो पत्नियां थी- हाजरा बेगम तथा साराह बेगम। नमरूद नामक क्रूर शासक से टक्कर लेते समय साराह ने उनके प्राणो की रक्षा की थी जिससे प्रसन्न होकर हजरत इब्राहिम

1. इदुज्जुहा · महरउद्दीन खा, आज साय समाचार (सा. वि.) 14 जनवरी, 1973 पृ 4



उस मेले का एक दृश्य   चादर चढ़ाते भक्तगण



तीज व्रत का त्यौहार



होली के अवसर पर होरीगीत गाते कलाकार



दीपावली पर लाठी भाजने का दृश्य



ने अपनी पत्नी से एक वर मागने को कहा। जब साराह ने देखा कि हाजरा गर्भवती है तो उसने वर मागा कि साराह को वनवास दे दे। उसे खतरा था कि बडी होने के नाते हाजरा की सतान ही राजपाट की मालिक होगी। अपने वचन की रक्षा के लिए हजरत इब्राहिम अपने दिल पर पत्थर रखकर अपनी प्यारी पत्नी को दूर रेगिस्तान मे छोड आये। कुछ समय पश्चात् साराह बेगम ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम "ईशहाक" रखा गया। जब ईशहाक की ताजपोशी हो गयी तो साराह ने इच्छा प्रकट की कि उस हाजरा की वापसी पर अब कोई आपत्ति नही है। उधर हाजरा ने भी एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम "इस्माइल" रखा गया। काफी समय पश्चात् जब हजरत इब्राहिम हाजरा बेगम को वापस लेने गये तो वह रेगिस्तान आबाद हो चुका था तथा इस्माइल उस बस्ती की आख के तारे बन गये थे। बस्ती वासियो ने हाजरा तथा इस्माइल को ले जाने पर आपत्ति प्रकट की तो हजरत इब्राहिम ने उन्हे वचन दिया कि वे कुछ समय पश्चात् इस्माइल को बस्ती की सेवा मे छोड जायेगे। परन्तु उधर जाने के बाद उन्हे अपना यह वचन याद न रहा तो कुछ समय पश्चात स्वप्न देखा कि वे अपने पुत्र को कुर्बान कर रहे है। वास्तव मे यह स्वप्न देखने के बाद उन्हे जब अपना वचन याद आया तो इसका जिक्र उन्होने अपने पुत्र इस्माइल से किया। इस्माइल ने अपने को कुर्बानी के लिए प्रस्तुत किया। पुत्र की सहमति तथा अपने वचन की रक्षा के लिए हजारा इब्राहीम ने अपने प्रिय पुत्र इस्माइल को इस आबादी बढा (जो बाद में मक्का हो गया) की सेवा मे छोड दिया।[1]

इसी पुरानी कथा के आधार पर अपना प्रिय पालित पुत्रवत् बकरे की बलि दी जाती है।

ईद-उल-फितर

जैसे हिन्दुओ के लिए कार्तिक माह शुभ माना जाता है, वैसे ही मुसलमानो के लिए रमजान का महीना शुभ माना जाता है। रमजान के महीने मे ही पैगम्बर साहब को कुरान की प्रेरणा मिली थी। रमजान का चाद दिखते ही ईद का त्यौहार प्रारभ हो जाता है। हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मों में चाद का महत्व स्वीकारा गया है।

त्यौहार चाहे हिन्दुओं के हो, चाहे मुसलमानो के अथवा अन्य किसी सम्प्रदाय के, वे सभी को हर्ष, उल्लास, प्रेरणा, चेतना, सद्भावना, आपसी प्रेम दे जाते है। उनका सामाजिक, सास्कृतिक, नैतिक और राष्ट्रीय महत्व है। रमजान के महीने मे रोजा रहना प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य है। ऐसी

1. वही पृ. 4 यह कथा "कुरान" मे भी आयी है।



धार्मिक मान्यता है कि रोजा की उपेक्षा करने वाले को नरक मिलता है। कुछ लोगो का यह भी विश्वास है कि पैगम्बर साहब हिजरत के समय एक गुफा मे भूखे-प्यासे रहे थे, अत प्रत्येक को भूखे-प्यासे रहकर व्रत करना चाहिए और रोजा के कारण बचे हुए पैसे को गरीबो मे बाट देना चाहिए। रोजा के समय जब साय या भोर मे कोई भोज्य पदार्थ ग्रहण किया जाय तो उसे मिल-बाट कर ग्रहण किया जाय।

व्रत या रोजा आत्मशुद्धि के लिए किया जाता है। उससे स्वास्थ्य लाभ और आत्म-सयम इद्रिय-निग्रह आता है। ईद का आविर्भाव कैसे हुआ, इस सबध मे एक बात कही जाती है वह यह कि पैगम्बर के आगमन से पूर्व अरबवासी इस माह मे बडी खुराफात करते थे, ईद के दिन जब मेला लगता था तो बडी हुल्लडबाजी होती थी। मद्य पी जाती थी। औरतो के साथ दुर्व्यवहार किये जाते थे। शिष्टाचार समाप्त हो जाता था। अनुशासनहीनता बढ जाती थी जिसकी वजह से पैगम्बर साहब ने उसे अनुशासनबद्ध और व्यवस्थित, सयमित करने के लिए "ईदमिलन' का श्री गणेश किया। तभी से सभी एक-दूसरे के गले मिलते, खाते-खिलाते और प्रेम-मुहब्बत से रहने की सीख ग्रहण करते है जो अन्य समुदायो के लिए भी अनुकरणीय होता जा रहा है।

रमजान के अतिम दिन ईदगाह जाकर ईद मिलन किया जाता है। इसका भी उद्‌देश्य यही है कि वहा सभी एक समान है। कोई छोटा-बडा नहीं है। वहा से लोग सदाचरण, सद्‌व्यवहार, समानता का भाव लेकर लौटते है। उस दिन नया वस्त्र धारण करते है ताकि अमीरी-गरीबी का फर्क मिट जाय। इसी समय आपसी बैरभाव, मनमुटाव भी होता है तो मिट जाता है। इसी दिन अन्न-दान की भी परिपाटी है। उचित व्यक्ति को ही दान दिया जाना चाहिए। किसी ऐसे को वह दान नही दिया जाना चाहिए जो जुआरी, शराबी, चरित्रहीन हो।

ईद के अवसर पर सेवइया खाने-खिलाने की जो परपरा चलायी गयी होगी, उसके पीछे भी सम्भवत उद्‌देश्य होगा कि वह प्रत्येक के लिए सहज सुलभ है। एक-एक चम्मच भी मिल जाय तो कम खर्चे मे सत्कार हो गया।

मुसलमानो मे तहजीब अनुकरणीय है। ये लोग एक ही चादर पर बैठकर जो कुछ भी सामने आयेगा, मिल-बाट कर खायेगे। एक ही रोटी तोडकर चार लोग खा लेगे। यहा पंक्ति-भेद तो है ही नही। यह भी नही है कि मुल्ला हलवा-पूडी खा ले और लोग रूखा-सूखा खाकर रह जाय। यह बडी अच्छी बात है।



मोहर्रम :

भारतीय धर्म मे शोक के लिए कोई स्थान नही है। "गीता" मे ''सुख-दु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ" कहा गया है, किन्तु मुसलिम धर्म मे शोक भी मनाया जाता है। एतदर्थ मुहर्रम भी मुसलिम सम्प्रदाय का एक मान्य त्यौहार बन गया है।

मोहर्रम इमाम हुसैन की शहादत का पर्व है इसलिए मुसलमान मोहर्रम मास मे उनकी याद ताजा करते तथा उनके जीवन तथा कृतित्व से शिक्षा ग्रहण करते है। इस अवसर पर पहली तारीख से दस तारीख तक मजलिसो आदि का आयोजन किया जाता है। महरउद्दीन खा का विचार है कि "भारत मे मोहर्रम की परपरा दशहरा के आयोजन से प्रभावित है। साम्प्रदायिक सद्भाव की यह एक अनुपम मिसाल है। दशहरा और मोहर्रम दोनो ही "सत्यमेव जयते" की प्रेरणा प्रदान करते है।"[1]

मोहर्रम से जुडा इस्लाम का इतिहास भी गौरवशाली है। "पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के पचास वर्ष बाद यजीद नामक बादशाह हुआ जिसने हजरत इमाम हुसैन को अपना आधिपत्य स्वीकार करने का सदेश भेजा। हजरत इमाम हुसैन इस सन्देश पर असहमति प्रकट कर मदीना छोड मक्का चले आये जहाँ अब्दुल्लाह बिन जुबैर खलीफा थे। इमाम हुसैन द्वारा मक्का छोडने पर यजीद के जासूस इस प्रयत्न मे लग गये कि हज के बहाने मक्का जाकर हुसैन को समाप्त कर दे, मगर सौभाग्यवश इमाम हुसैन हज से एक दिन पूर्व "कूफा" के लिए कूच कर गये। पच्चीस दिन पश्चात मोहर्रम की दूसरी तारीख को अब्दुल्ला बिन जयाद ने उन्हे कर्बला के स्थान पर रोक लिया तथा न उन्हे आगे बढने दिया और न पीछे लौटने की अनुमति दी। इमाम हुसैन ने उनसे विनती की कि वह उन्हे भारत या ईरान चले जाने दे, मगर गवर्नर कूफा ने यह प्रार्थना अस्वीकार कर दी तथा उनके काफिले को यजीदी सेना ने चारो ओर से घेर लिया। मोहर्रम की सात तारीख को उनका फरात नदी से पानी लेना भी बन्द कर दिया गया। तीन वर्षीया बालिका पानी के लिए तडप रही थी, उसके चचा अब्बास अलमदार से बालिका का तडपना न देखा गया। चमडे का थैला लेकर वह नदी मे पानी लेने गये तो यजीदी सैनिको ने उन पर तीर बरसा दिये। तीरो के बीच वह पानी लेकर चले तो सैनिको ने उनके हाथ काट दिये। उन्होने थैला दांतो से पकड लिया तो सैनिको ने थैले को तीरो से छलनी बना दिया। सैनिक बिलखते बच्चो के सामने पानी लाते और जब बच्चे हाथ बढाते तो पानी बिखेर

1 *मोहर्रम इमाम हुसैन की शहादत का पर्व महरउद्दीन खा आज साय समाचार (सा वि), 18 फरवरी, 1973 पृ. 14*



दिया जाता। नन्हा अली असगर जब पानी के लिए बिलखने लगा तो सिपाहियो ने उसके गले मे तीर मारकर उसे शात कर दिया। इन जुल्मो के मध्य तीन दिन तक यह पूरा काफिला रहा ओर मोहर्रम की इस तारीख को पूरा काफिला शहीद हो गया। इस प्रकार हजरत इमाम हुसैन की इस सपरिवार शहादत का पर्व मोहर्रम है जिसे शिया वर्ग के मुसलमान मनाते है। यह त्यौहार दस दिन तक मातमी तरीके से मनाया जाता है तथा अनेक जूता नही पहनते, हाथो मे कडा धारण करते है चारपाई पर नही सोते।

मोहर्रम के अवसर पर मर्सिया (शोकगीत) गाया जाता है। स्त्री-पुरुष सभी सम्मिलित होते है। सातवी तथा आठवी तारीख को दृश्य हृदय-विदारक हो जाता है। हुसैन के भक्तगण अपने सीने पर बार-बार प्रहार करते है। रोते और विलाप करते हैं। ताजिया निकालते हैं। कुछ लोग छुरियो से अपने शरीर तक को गोद देते तथा लहू-लुहान हो जाते है। शोक जुलूस निकालते है।

रमजान :

इस्लाम धर्म मे इस्लामी साल का नवा महीना रमजानुल मुबारक बडे उत्साह से मनाया जाता है। इस महीने पवित्र कुरान नाजिल हुआ। कुरान को अल्लाह की कृति और रमजान को अल्लाह का महीना माना गया है, इसीलिए ये दोनो पवित्र है। शाबान को हजरत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम ने अपना महीना बताया है और शाबान में ही शबे-बारात यानी मुक्ति की रात होती है। शबे बारात से रमजान की तैयारी प्रारभ हो जाती है। यह रोजे का महीना है जिसमे सभी बालिग और अक्लमन्द मर्दों-औरतो को रोजा रहने का फर्ज है। जो रोजा नही रहता, वह गुनाह करता है। निर्देश है कि इस अवसर पर रोजा रखते हुए उसकी रातो का कयाम करे और सुन्नत के मुताबिक तबारीह पढे, असत्य और गुनाहो से बचे, इबादत करे। ऐसा करने से हर नेकी और फर्ज का सबाब सत्तर गुना मिलता है। इतना ही नही 'तिरमिजी और इब्नेमाजा' मे है कि रसूले पाक फरमाते है कि रमजान की पहली रात से ही सरकश जिन्नातो और शैतानो को कैद कर लिया जाता है। इस एक माह पर्यंत नरक के दरवाजे बंद और स्वर्ग के दरवाजे खुले रहते है। इस माह सूर्योदय से लगभग डेढ घटा पूर्व सहरी खायी जाती है तथा दिन भर निराहार रहकर सूर्यास्त के बाद इफ्तार करके मगारिफ की नमाज पढी जाती है। स्त्री-सहवास वर्जित है। अधिक बूढे, बीमार, गर्भवती, मुसाफिर के लिए यह नियम अपवाद है।



इस व्रत की इतनी मान्यता है कि रमजान की एक रात शबे-कद्र या लैलतुल कद्र कहलाती है। इस रात मे इबादत करने पर एक हजार महीने का शबाब मिलता है। इन्सान तमाम गुनाहो से मुक्त हो जाता है, लेकिन जो शराबी है या माता-पिता का अनादर करते है, उनकी बख्शियत नही होती।

रमजान की तैयारी में मस्जिदे सजायी जाती है। वस्तुए क्रय की जाती है। नये वस्त्र, मधुर भोज्य पदार्थ घरो मे रखे रहते है। उनसे मेहमानो का स्वागत किया जाता है। रमजान के महीने के चाद की बड़ी प्रतीक्षा रहती है। सभी लोग बाहर निकल कर, छतो पर चढकर, नदी-तट पर चाद-दर्शन का उत्सव मनाते है। दिल खोलकर यतीमो बेवाओ, फकीरो, गरीबो और बेसहारो की मदद करते है। जकात अदा करते है। मस्जिदो मे रोजादारो के लिए इफ्तार का सामान भेजते है। रोजे मे कुरान की तिलावत खास तौर पर की जाती है। हाफिज मस्जिदो मे तवारीह पढाते हैं। रमजान के अतिम जुमे (शुक्रवार) को अलविदा की नमाज अदा की जाती है। इस महीने सेवई की बिक्री खूब होती है और घर-घर बनती है। वह विविध प्रकार से बनायी जाती है। बनारस की सेवई दुनिया भर मे प्रसिद्ध है। एक माह के लिए मुसलमान पूर्ण रूप से इबादतगुजार बन जाता है। ईद के चाद के साथ रोजे की समाप्ति हो जाती है। ईद के दिन रोजे का शुक्रिया अदा करने के लिए ईदगाहों मे नमाजे शुकाना अदा करते है। एक-दूसरे से खुशी का इजहार करने के लिए गले मिलते है। शब्बाल ईद की सात तारीख को मडुआडीह मे प्रसिद्ध सूफी सत हजरतशाह तैयब कुतुब बनारस रहमतुल्लाह अलैह का उर्स होता है।

भोजपुरी भाषी जनपदो मे प्रत्येक जगह यह पर्व पूरे उत्साह से हिन्दू-मुसलमान, सिख, ईसाई सभी के द्वारा मनाया जाता है। हिन्दू सेवइया खाने मुसलमान के घर जाते है। उनके आयोजनों मे सम्मिलित होते है। बहुत से हिन्दू भी रोजा के नियमों का पालन करते है। इस प्रकार यह पर्व हिन्दू-मुसलिम, सिख, ईसाई की एकता का प्रतीक बन गया है।

ईसाई-पर्व

क्रिसमस :

हर धर्म, जाति, सम्प्रदाय मे त्यौहारो का महत्व रहा है। त्यौहारो से हमे जीवन मे हर्ष, उल्लास, आनन्द, आह्लाद तो प्राप्त होता ही है, जीवन के आदर्शों की भी प्रेरणा मिलती है। भारत मिली-जुली सस्कृतियो का धर्म प्राण देश है। मुसलिम सस्कृति की अच्छी बातो को हमने ग्रहण किया है, उसी प्रकार ईसाई धर्म से भी हमने सेवा, त्याग, बलिदान की शिक्षा ग्रहण की है। यही कारण है कि ईसा मसीह की शिक्षाओ को हमने जीवन मे उतारने का प्रयास भी किया है। आदिवासियो, पिछडी जातियो मे ईसाई मिशनरियो की बडी पकड है। इसका कारण क्या है ?

वास्तव मे ईसा मसीह प्रकाश स्वरूप थे। रोमन जाति सूर्य का जन्म दिन 25 दिसम्बर मानती है। इसी दिन ईसा मसीह का भी जन्म दिन मनाया जाता है। लगता है जैसे-जैसे ईसाई धर्म का, उसकी अप्रतिम उदारता के कारण प्रचार-प्रसार बढता गया, वैसे-ही वैसे क्रिसमस त्यौहार का भी महत्व बढ़ता गया। आज दुनिया मे ईसाई धर्मावलबियो की संख्या सबसे अधिक है और क्रिसमस इनका सबसे बडा त्यौहार है। इस दिन बडे पैमाने पर आमोद-प्रमोद, अतिथि-सत्कार, सदाशयता, सहृदयता, मानवता, उदारता, उन्मुक्तता, मित्रता, धार्मिकता का वातावरण रहता है। इस दिन उपहारो का आदान-प्रदान होता है। प्रत्येक घर मे क्रिसमस वृक्ष लगाया जाता है। यह परपरा आठवी शताब्दी मे जर्मनी से प्रारभ हुई थी। आज के बढते प्रदूषण के युग में इसका बडा महत्व है। कहते है एक बार मार्टिन लूथर कही से अपने घर वापस आ रहा था, उसने आकाश मे छिटके तारे देखे। वहा एक वृक्ष था जिसके शीर्ष भाग पर कोई प्रकाश दिखलाई पडा जो दिव्य तथा सुन्दर था। लूथर ने घर पर आकर एक डाल लगायी और उसे दीप मालाओ से प्रकाशित कर दिया, जिसे देखकर लोगो ने दिव्यता का अनुभव किया और अपने-अपने घरो मे ऐसे ही वृक्षो की शाखाओ मे दीप प्रज्ज्वलित किये। तभी से यह त्यौहार दीप का त्यौहार बन गया। देवदार या सदाबहार वृक्ष को अब सुन्दर से सुन्दर सजाने की परपरा बन गयी है। यह मान्यता है कि "इस वृक्ष को देवताओं ने भी उस समय सितारो से सजाया था, जब वह "वैथलहम" में नवजात शिशु ईसा के जन्म पर बधाई देने के लिए अन्य वृक्षो के साथ पहुचा था और उपेक्षित-सा एक ओर खडा था। इस वृक्ष को इसलिए भी पसन्द किया जाता है कि इसकी शाखाए समकोण बनाती निकलती है और इस कारण क्रास का चिन्ह बनाती



है। सम्भव है इस क्रास से ही क्राइस्ट बना हो और वही शहादत का प्रतीक है। कहते है विश्व का विशालतम हरा-भरा "क्रिसमस वृक्ष" "विलिगटन मे" (उत्तरी कैरोलिना के हिलटन पार्क मे) है। 300 वर्ष पुराना यह वृक्ष 90 फुट ऊचा है। इसका तना 15 फुट है और इसका छायावृत्त 110 फुट है। क्रिसमस के दिन इसे सजाने मे 6 टन हरी दूब, असख्य विविध आभूषण और शाखा-प्रशाखाओ पर लगभग सात-आठ बल्बो का उपयोग होता है। यहा एक सप्ताह मेला लगा रहता है। अमेरिका मे इस दिन 5 लाख वृक्ष लगाये जाते है। इस प्रकार विश्व भर मे अरबो वृक्ष लगाये जाते है जो पर्यावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

अब क्रिसमस को वर्ष का अतिम पर्व मानकर नये वर्ष मे प्रवेश के लिए एक-दूसरे को नये वर्ष की शुभकामनाए प्रर्पित की जाती है। बडा दिन के रूप मे भी हम इसे मनाते है। इस दिन के बाद से दिन का बड़ा होना प्रारभ हो जाता है। नये वर्ष के उपलक्ष्य मे शुभकामना सन्देश भेजे जाते है। इसकी भी एक रोचक कहानी है। इसका आरभ इग्लैड से हुआ। सबसे पहला क्रिसमस कार्ड सन् 1846 मे रायल एकेडेमिशियन द्वारा अपने मित्र को भेजा गया था। 1882 मे ही एक व्यावसायिक सस्था ने सात हजार पौंड का धन केवल इन कार्डों की डिजाइनिग पर खर्च किया था। अब विश्व भर मे कितने और कितने प्रकार के कार्ड छपते-बिकते है, बताना कठिन है। ऐसा माना जाता है कि ईसा मसीह का जन्म भी कृष्ण की ही तरह मध्यरात्रि मे ही हुआ था। इसी कारण मध्यरात्रि मे (25 दिसम्बर को) प्रत्येक गिरजाघर मे घण्टे एक साथ एक लय मे बजते है जो बडे प्रेरक और आह्लादकारी होते है। जो भी हो, बड़ा दिन का त्योहार मानवता के उद्धार का त्यौहार है। इस दिन हम उस दिव्य पुरुष को याद करते है जिसने विश्व को एक नया प्रकाश दिया था।[1]

1 सन्दर्भ बड़ा दिन और उसकी परम्परा . राम प्रताप मिश्र – आज साय समाचार (सा वि), 23 दिसम्बर, 1973 पृ. 10



राष्ट्रीय पर्व

गणतंत्र दिवस :

राष्ट्र को देवता समझकर उसे प्रणाम करना चाहिए- 'राष्ट्रदेवाय नम "। राष्ट्र सर्वोपरि होता है। इसी कारण "गीता" मे भगवान श्रीकृष्ण ने कहा था कि हे अर्जुन, युद्ध मे मारे जाओगे तो स्वर्ग प्राप्त होगा, जीते रहोगे तो यशस्वी बनोगे, इसलिए युद्ध करो। भारत मे और भोजपुरी भाषी जनपदो मे भी तीन राष्ट्रीय पर्व मनाये जाते है- (1) 26 जनवरी को गणतत्र दिवस, (2) 15 अगस्त को स्वतत्रता दिवस, (3) 2 अक्टूबर को राष्ट्रपिता महात्मा गाधी का जन्मदिवस।

"गण" का अर्थ है समूह और तत्र का अर्थ है "शासन" अर्थात् समूह का शासन। जन समूह का शासन। विदेशी शासन से मुक्ति के बाद देश एकता और बन्धुत्व के श्रेष्ठ आदर्शों के आधार पर समतायुक्त, शोषण रहित भारतीय गणराज्य की कल्पना हमने की थी। इसके लिए 26 जनवरी 1950 को स्वतत्र भारत का नवीन सविधान लागू किया गया जिसके अनुसार देश के सभी नागरिको को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिए तथा सबमे व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखण्डता को बनाये रखने वाली बन्धुता बढाने का स्पष्ट सकल्प किया गया। अब्राहिम लिकन ने जनतत्र की जो परिभाषा दी है वह है- "जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा चलाया गया शासन ।

पन्द्रह अगस्त, 1947 को स्वतत्र भारत की प्रथम सविधान परिषद के अध्यक्ष पद से सम्बोधित करते हुए डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था- "आज से हम कानूनी तरीके से अपने भाग्य के विधाता बने है और इस देश को शात, सुखी और समुन्नत बनाने का सारा भार हमारे ऊपर आ गया है। जो स्वराज्य हमने हासिल किया है, वह खोखला रह जायेगा अगर हमने देश के रहने वाले सभी वर्ग, जाति और धर्म के लोगो में यह विश्वास पैदा नही किया कि वह यहा सुरक्षित है, उनकी उन्नति और तरक्की के रास्ते मे कोई बाधा नही डाल सकता है, उनको धर्म और धर्माचार की पूरी आजादी है। उनकी भाषा और सस्कृति पर कोई आघात नही पहुचा सकता है, आदिम जातियो और दूसरे पिछडे हुए लोगो की उन्नति के लिए उस समय तक विशेष आयोजन और प्रयत्न होता रहेगा, जब तक वह सबो की वफादारी का दावा करे और उनका फर्ज है कि वह वफादारी देवे।[1]

1. गणतन्त्र विशेषाक "आज" 25 जनवरी, 1998 पृ. 2



हम इसी भावना को व्यवहारिक रूप दे सके तो हमारी आजादी, हमारा गणतत्र बचा रहेगा वर्ना वह खतरे मे भी पड सकता है। यह आजादी हमे शताब्दियो के प्रयास और कुरबानी के फलस्वरूप मिली है। आजादी के लिए आजादी के दीवानो ने गोलिया खायी, प्राणाहुति दी, घर-परिवार की चिता किये बगैर आजादी की राह पर चलते गये। कितने शहीद कितने बलिदान हुए, कोडे खाये, उन पर मशीने तक चलायी गयी, फासी के तख्त को हॅसते-मुसकुराते चूमा, माताओ की गोद खाली हुई तो ललनाओं के सिन्दूर पुछ गये, लेकिन तब भी अपने लक्ष्य से वे तनिक भी विचलित नही हुए। उसी का सुपरिणाम है- आजादी। आज देश के प्रत्येक नर-नारी को उसकी रक्षा का व्रत लेना चाहिए।

भारतीय इतिहास मे 26 जनवरी का बहुत पहले से ही महत्वपूर्ण स्थान है। इसे गणतत्र दिवस के रूप मे मनाये जाने से पूर्व प्रतिज्ञा दिवस के रूप मे मनाया जाता रहा है। सन् 1929 को 26 जनवरी के दिन प. जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रीय काग्रेस के लाहौर अधिवेशन मे देश के लिए पूर्ण स्वतत्रता की प्राप्ति की प्रतिज्ञा की थी और कहा था कि जब तक हमारे देश पर हमारा राज्य नही होगा, हमारा अग्रेजो से सघर्ष जारी रहेगा। अत मे अपना राज्य कायम हुआ और 26 जनवरी को गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटन ने भारत के नव निर्वाचित प्रथम राष्ट्रपति डा राजेन्द्र प्रसाद को सम्पूर्ण अधिकार सौपा था। चद्रशेखर "आजाद", भगत सिह, बिस्मिल, खुदीराम बोस, सुभाषचन्द्र बोस, गाधी, गोखले, तिलक, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, कवीन्द्र रवीन्द्र, विनोबा भावे आदि देशभक्तो ने अपनी कुरबानिया आजादी के लिए दी।

ये राष्ट्रीय पर्व हमे अन्याय, अत्याचार, उत्पीडन के विरुद्ध सघर्ष की प्रेरणा देते है। हममे भावी पीढी में भी सत्य, अहिसा, अहिसात्मक सघर्ष, त्याग, न्याय, मानवता, देशप्रेम, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता सर्वांगीण विकास, शहीदों के प्रति श्रद्धा, आस्था, विश्वास, मातृभूमि की रक्षा, सादगी, स्वदेशी जागरण की प्रेरणा देते और यादे ताजी कर देते है। यह ऐसा पर्व है जिसमे हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, पारसी सभी अपना मतभेद भुलाकर राष्ट्रदेव की आराधना मे लग जाते है।

राष्ट्रीय ध्वज का ऊपरी केसरिया रंग त्याग, बीच का सफेद रग सादगी और सात्विकता, नीचे का हरा रग हरियाली और सामजस्यता, श्रम का प्रतीक है। बीच मे चक्र का निशान चौबीसो घण्टे सजग, जागरूक रहने की प्रेरणा देता है-

ये चौबीसो अरे चक्र के प्रतिफल मुझसे कहते।
सावधान चौबीसो घण्टे, है हममे बल भरते।।



इस प्रकार गणतत्र दिवस का पर्व केवल हर्षोल्लास का ही पर्व नही है, अपितु अपने अतीत के स्मरण और उस पर गर्व और गौरव का अनुभव करने का भी पर्व है।

स्वतत्रता दिवस

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतत्र हुआ था। यह स्वतत्रता लम्बे सघर्ष के बाद अनेक कुरबानियो के फलस्वरूप उस दिन ठीक बारह बजे रात को मिली थी। तभी से हम हर वर्ष यह राष्ट्रीय पर्व देश की आजादी की रक्षा का व्रत लेते हुए मनाते हैं। इस अवसर पर देश भर मे विविध आयोजन होते है। लालकिला पर देश के प्रधानमत्री द्वारा तिरगा झण्डा फहराया जाता है जहा देश-विदेश के देश-भक्त एकत्र होते है। इस समारोह को देखने के लिए लाखो की भीड एकत्र होती है। झाकिया और जूलूस निकाले जाते है। सम्मेलन और गोष्ठियां आयोजित की जाती है। लालकिला पर और दिल्ली मे ही नही, देश के कोने-कोने मे, विदेशो मे भी, नगर-नगर और गांवो मे भी प्रत्येक सरकारी और गैर-सरकारी इमारतो पर झण्डा लहराकर शहीदो के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की जाती है। मिठाइया बाटी जाती है। शिक्षालयो मे प्रत्येक जगह ये कार्यक्रम आयोजित किये जाते है। प्रभात फेरिया होती है। प्रत्येक जाति, सम्प्रदाय, धर्म के लोग इस समारोह मे सम्मिलित होते है, क्योकि यह देश सबका है और सबको इसका गौरव और सम्मान होना चाहिए-

जिसको न निज ग्रैरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नही, नरपशु निरा है, और मृतक समान है।।

-- मैथिलीशरण गुप्त



मेले-ठेले तथा उर्स

आजमगढ़

आजमगढ बहुत पुराना नगर नही है, किंतु तमसा के तट पर स्थित होने के कारण सास्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है। काशी के सत-महात्मा यहा आते रहे है। यह भूमि तपस्या के लिए उपयोगी रही है। तमसा गोमती की तरह गहरी नदी है जिसके तट पर अनेक यज्ञानुष्ठान होते रहे है। उन्ही स्मृतियो को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यहा मेलो-ठेलो का आयोजन किया जाता है। इस जनपद के मुख्य मेले निम्नलिखित है-

दुर्वाशाधाम :

यह स्थान आजमगढ से फूलपुर-खुरासन मार्ग पर छ किमी0 उत्तर मे स्थित है। यहा प्रत्येक वर्ष कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर बहुत बडा मेला लगता है। इतना बडा कि दो से तीन लाख दर्शनार्थी यहा एकत्र हो जाते है। आस-पास के जनपदो से भी यहा लोग स्नान-दर्शन, पूजन, भजन-कीर्तन मे प्रतिभाग करते हैं। यहा जाने के लिए सडक और रेलमार्ग की सुविधा है। यहा ठहरने के लिए धर्मशाला और विशाल पुराना सुन्दर मदिर है। कार्तिक पूर्णिमा की शारदीय, सुहावनी, सुखद अमृत वर्षा करने वाली चादनी रात में चन्द्र प्रकाश मे चद्रिका-स्नान करते हुए आनन्दोल्लास के वातावरण मे विविध धार्मिक तथा सास्कृतिक आयोजन होते हैं। यदा-कदा कवि-सम्मेलन, मानस-यज्ञ, गीता-प्रवचन भी होते है। यह मेला वैसे तो एक सप्ताह चलता है, किंतु गहमा-गहमी तीन दिन रहती है। कहते है, यहा चौरासी हजार ऋषियो ने तपस्या की थी। तमसा और मजूषा के सगम पर आज भी कुछ अवशेष प्राप्त हो जाते है। दुर्वाशा के नेतृत्व मे यहा ऋषियो का महासगम हुआ था और उनकी तपस्या से पूरा क्षेत्र तपःपूत हो गया था। यहा तब से अब तक कई महायज्ञ-यज्ञ हो चुके है।

इस मेले मे हस्तकला के सामान- कुदाल, फावडा, हसिया, पहसुल, करछुल, सडसी, औजार, दैनिक उपयोग की वस्तुए बिकने के लिए आती है। आजमगढ के लाल मिट्टी के पात्र तथा टेराकोटा और लकडी की बनी कलात्मक कलाकृतिया प्रसिद्ध है। इस मेले मे उनकी भारी खपत होती है जिससे राजस्व की भी प्राप्ति हो जाती है।



भैरोजी का मेला :

नगर से 22 किमी0 उत्तर-पश्चिम की ओर महराजगज के पास एक स्थान है जहा महाशिवरात्रि ज्येष्ठ दशहरा तथा प्रत्येक माह की पूर्णिमा पर मेला लगता है। यहा एक पुराना बडा तालाब है जिसके तट पर मेले के दिन भारी भीड एकत्र हो जाती है। शिवरात्रि पर लगभग 20-25 हजार किंतु गंगा दशहरा के अवसर पर एक लाख से ऊपर जनसमूह उमड पडता है। कहते है, इस तालाब मे स्नान करने से पुण्य प्राप्त तो होता ही है, चर्मरोग से भी छुटकारा मिल जाता है। यहा एक नाला भी बहता है। इस नाले मे एक कुण्ड है जो सदानीरा है और हमेशा पानी बहता रहता है। इसकी पवित्रता का कारण यह भी बताया जाता है कि यहा पार्वती जी ने यज्ञकुण्ड मे कूदकर अपने प्राणो की आहुति दे दी थी। कथा है कि पार्वती जी के पिता ने बहुत बडा यज्ञ कराया था जिसमे शिवजी को आमत्रित नही किया था। जब पार्वती जी ने शिवजी से यज्ञ मे चलने के लिए निवेदन किया तो शिवजी ने नकार दिया। बहुत अनुनय-विनय करने के बाद भी जब शिवजी नही गये तो वे स्वय गयी, लेकिन अपनी तथा शिवजी की उपेक्षा और अपमान समझकर प्राणार्पण कर दिया। यहा जो यज्ञ हुआ था, उसमे पार्वती जी जलकर भष्म हो गयी थी जिसके कारण वहा की राख आज भी गर्म रहती है, ऐसी मान्यता है। उस राख को लोग अपने बदन पर लगाते है जो हर प्रकार से लाभदायक है। भष्म को मस्तक पर भी लगाते है।

गोविन्दशाह का मेला :

आजमगढ नगर से लगभग 50 किमी. पश्चिम फैजाबाद मार्ग पर यह मेला खिचडी (मकर सक्राति) के अवसर पर 15 दिनो का लगता है। इसे गन्ने वाला मेला भी कहा जाता है, क्योकि यहा गन्ना बहुत पैदा होता है और मेले मे लाखो रूपये का गन्ना बिक जाता है। यहाँ लाल रग का गन्ना बिकने को आता है और पाच से दस रुपये तक एक गन्ना बिकता है। यहां गन्ना चढाने की परपरा है। उसी का प्रसाद ग्रहण किया जाता है।

गोविन्दशाह हिन्दू थे। इसे उन्ही के नाम पर अब शक्तिपीठ की मान्यता प्राप्त हो चुकी है। यहां खिचडी भी चढाई जाती है। खिचडी बनाकर खायी भी जाती है। यहां दो लाख तक दर्शनार्थी पहुच जाते हैं और इतनी खिचडी चढ जाती है कि उसे बांटना पडता है। गरीब, भिखारी खिचडी खाकर अघा जाते है। ऐसी मान्यता है कि यहा आकर दर्शन करने से हर प्रकार की मनोकामनाए



पूरी हो जाती हैं। यह स्थान फैजाबाद और आजमगढ़ की सीमा पर स्थित, है, अतः इस मेले से दोनों जनपदों को दुकानों से लाखों रुपये की आय हो जाती है।

यहां एक विशेष प्रकार की मिठाई बिकती है, जो बड़ी स्वादिष्ट होती है। यह मैदे से बनती है और एक से दो किलोग्राम तक होती है जिसे काटकर खाया जाता है। एक प्रकार से यह सोहन हलवा होता है। यहां की बनी इस मिठाई का राष्ट्रीय बाजार है। यहां आने-जाने के लिए सड़क यातायात की सुविधा है।

इसके अलावा इस जनपद में नगर को मिलाकर विभिन्न पर्वों, त्यौहारों, व्रतों, उत्सवों पर मेले-ठेले लगते रहते हैं जिनसे जनता अपना मनोरंजन करती है। इस जनपद का संबंध तमाम ऋषियों-महर्षियों से जोड़ा जाता है। माता अनसुइया के कारण भी यह स्थान पवित्र हो गया है। दत्तात्रेयजी के भी पावन चरण यहां पड़े हैं। निजामाबाद के पास चार किमी0 पश्चिम शहर से भंवर नाथ मंदिर पर शिवरात्रि पर मेला लगता है। अनसुइया माता के तीन पुत्र थे जिनके नाम पर तीन संगम स्थल बने हैं। दुर्वाशा स्थल पर दुर्वाशा ने स्वयं शिवलिंग स्थापित किया था, जिसके कारण उस स्थान का महत्व और भी बढ़ गया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन आजमगढ़ के ही थे। उन्होंने इस जनपद के बारे में बहुत कुछ लिखा है जो प्रमाण बन गया है। उनका मत है कि दुर्वाशा जी जब जाने लगे तो ऋषियों ने आग्रह किया कि हे महर्षि ! आप यहां कुछ निशान छोड़ जायं, तो उन्होंने शिवलिंग की स्थापना की जो आज भी लाखों भक्तों की श्रद्धा का स्थल बना हुआ है। शिवरात्रि के अवसर पर शिवभक्त कांवरिया यहां आकर दुर्वाशा के नाम पर जल चढ़ाते हैं।



गाजीपुर

गाजीपुर वाराणसी के प्रभाव-क्षेत्र मे आता है। बलिया, आजमगढ उसके समीपवर्ती जनपद है। अत गाजीपुर की सास्कृतिक परपरा भी बडी समृद्ध है। गगातट पर स्थित होने के कारण यहा अनेक पौराणिक अनुष्ठान भी होते रहे हैं। विभिन्न अवसरों पर मेलो-ठेलो का आयोजन होता रहा है। गाजीपुर मे हिन्दू-मुसलमान दोनो निवास करते है।

कामाक्षा माई का मेला :

गाजीपुर मे गहमर बहुत बडा गाव है वहा कामाक्षाधाम है। वहा नवरात्र के अवसर पर बहुत बडा मेला लगता है जिसमे एक लाख से अधिक की भीड हो जाती है। पास-पडोस के जनपदो के दर्शनार्थी, भक्तगण, मेला-दर्शक यहा आकर देवी का दर्शन तो करते ही है, मेले का भी आनद लेते हैं। श्री अजय शेखर के अनुसार "मा की यह मूर्ति पहले फतेहपुर सीकरी मे स्थापित थी तथा वहां उनका पूजन-आराधना होता था। रवना के ऐतिहासिक युद्ध मे राणासागा की जब पराजय हुई तो उनकी सेना में भगदड मच गयी। बाबर की फौज ने युद्ध मे राणासागा की फौज तथा उनका साथ देने वाले राजाओ, सामतो तथा सरदारो का पीछा किया। फतेहपुर सीकरी के राजा धामसिह जू देव जो राणासागा का युद्ध मे साथ दे रहे थे, उनका भी पीछा किया। राजा धामसिह अपने राजपुरोहित गगेश्वर उपाध्याय तथा दीवान वीरसिह ठाकुर के साथ देवी की मूर्ति भी साथ मे लेकर भाग निकले। उन दिनो गहमर का घना जगल था। धामसिह जू देव और उनके साथी इस गहमर के वन मे छुप गये। बाद मे उस पर कब्जा भी कर लिया। जनश्रुति के अनुसार भगवती ने धामसिह जू देव को गहमर मे ही अपनी मूर्ति स्थापित करने के लिए स्थान भी निर्देशित किया। स्वप्न म निर्देशित स्थान पर धामसिह जू देव ने भगवती की मूर्ति की स्थापना की। तभी से उनकी पूजा तथा आराधना आरभ हो गयी। तभी से यहा मेला भी लगने लगा जो प्राय नवरात्र भर चलता है। यहां मदिर में सीधे नही जाया जाता, अपितु देहरी पर रुक कर मां का गीत गाते हुए मदिर मे प्रवेश किया जाता है।

यहा गायक, नर्तक समूह मे गावो से आते है। स्त्रिया पारपरिक गीत गाती हुई देवी के मदिर मे प्रवेश करती है। इस विन्ध्यक्षेत्र मे विन्ध्याचल के बाद यह दूसरा बडा देवीधाम है। यहा गमनागमन, सदेश वाहन, आवास की सुविधाए उपलब्ध हैं। मार्ग पक्का है। गाव में बाजार भी है। इस गाव के लोग देश के कोने-कोने में नौकरी करते है। प्रबुद्ध गाव है।



जमदग्नि आश्रम का मेला :

गाजीपुर की जमनिया एक तहसील है जिसका नामकरण जमदग्नि ऋषि के नाम पर, यहा उनका आश्रम होने के कारण किया गया है। कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर यहा बडा मेला लगता है। यहा परशुरामजी का भव्य मदिर भी है जहा अक्षय तृतीया को मेला लगता है। यहा दर्शन, पूजन, गंगा स्नान, भजन, कीर्तन, प्रवचन, यज्ञ, सास्कृतिक आयोजन, कजरी, विरहा, चैता, फाग भी होता है। यहा भी यातायात, सन्देशवाहन, आवास की सामान्य सुविधाए उपलब्ध है।

शेख सम्मन का उर्स ·

गाजीपुर मे सैदपुर एक प्रमुख स्थान है। यहा शेख सम्मन की मजार है। मार्च और अप्रैल मे यहा बहुत बडा उर्स मेला लगता है जो तीन दिन तक चलता है। इस मेले में हिन्दू-मुसलमान दोनो दूर-दूर से आकर चादरे चढाते है। कव्वाली का वृहद् आयोजन होता है। नृत्य, सगीत के कार्यक्रम भी होते है। यहा भी गमनागमन, सन्देशवाहन तथा आवास की सुविधाए उपलब्ध है। इस उर्स मेले को भावात्मक एकता का प्रतीक माना जा सकता है।

अन्य मेले :

इस जनपद मे गगा दशहरा, रामलीला, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तथा अन्य अवसरो पर भी मेले लगते है।



गोरखपुर

गोरखनाथ :

गोरखपुर बाबा गुरु गोरखनाथ के नाम से जाना जाता है। नाथ सम्प्रदाय के सस्थापक तथा प्रथम साधु गुरु गोरखनाथ ने यही रहकर नाथ सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया था। वहा नगर के समीप आज भी विशाल मदिर, पार्श्व मे तालाब बना हुआ है जहा विभिन्न अवसरो पर वैस भी मेला का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। तब भी मकर सक्राति (खिचडी) के अवसर पर यहा बहुत बडा मेला लगता है जिसमे लाखो-लाख श्रद्धालु यहा आकर जल, अक्षत, खिचडी, फल, फूल, मिष्ठान्न तिलकुट चढाते है। यहा का यह मेला लगभग एक माह चलता है। इस मेले मे देश-विदेश के नाथ सम्प्रदाय के मतानुयायी यहा आते और भजन-कीर्तन मे सम्मिलित होते है। यहा इतना चढावा आता है कि साधु-सतो के भोजन एव अन्य खर्चे उसी से निकल आते है। सैकडो मन खिचडी चढती है। यहा वैसे तो वर्ष भर भजन-कीर्तन चलता रहता है, किंतु खिचडी माह जनवरी मे वृहद् आयोजन होता है। यह विश्व-प्रसिद्ध मेला है।

इस मेले मे काष्ठ कला की वस्तुए, मिट्टी के टेराकोटा पात्र बिकने के लिए आते हैं जिनका बडे पैमाने पर क्रय-विक्रय होता है। वैसे तो मदिर का ट्रस्ट है, किंतु इस जनपद, नगर महापालिका की ओर से भी मेले की समुचित व्यवस्था की जाती है। इससे उनकी आय मे लाखो की वृद्धि हो जाती है। चूकि यह स्थान शहर के पास स्थित है, अत यातायात, संदेशवाहन के सभी साधन उपलब्ध रहते है। यात्रियो के टिकने के लिए धर्मशालाओ के अतिरिक्त होटल, व्यक्तिगत तथा पर्यटन विभाग के उपलब्ध है।

तरकुलही का मेला :

गोरखपुर से 15 किमी0 दूर देवरिया मार्ग पर एक स्थान है जहा मेला लगता है। यहां तरकुल के एक विशाल वृक्ष के नीचे मॉ का प्राकट्य हुआ बताया जाता है। यहा शहीद बन्धु नाम के एक स्वतत्रता सेनानी थे जो मॉ के परम भक्त थे। वे मॉ को प्रतिदिन एक अग्रेज की बलि चढाते थे ऐसा कहा जाता है। अग्रेज इन्हे पकडते और जब फासी के तख्ते पर चढाते तो फदा अपने आप

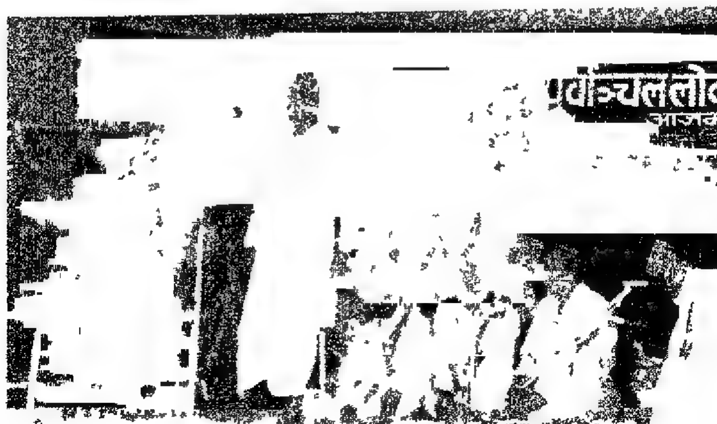




का एक दृश्य शंखवादन मेले के मंच पर



अन्तर्जातीय करमा नृत्य करमा पूजन का एक दृश्य



शिवरात्रि मेले में लोरिकदेव के गीत का गायन 'लोरिकायन' का एक दृश्य



ज्वालामुखी देवी का पूजानृत्य, [illegible]



रामलीला का
एक दृश्य



टूट जाता था। अत मे जब उनकी मौत हो गयी तो तरकुल का पेड अपने आप टूट गया और तब देवी ने प्रसन्न होकर उन्हे अपनी अक्षय भक्ति प्रदान की।

यहा चैत्रमास मे नवरात्र के अवसर पर बडा मेला लगता है। यहा बकरे की बलि चढायी जाती है और भक्तगण बलि का प्रसाद लिट्टी के साथ ग्रहण करते है। यहा भी चढायी हुई बलि का प्रसाद दुकानो पर भी खूब बिकता है। चेत्रमास के शुक्रवार की चारों तिथियो को यहा भारी भीड एकत्र होती है। इस मेले मे भी दैनिक उपयोग की वस्तुओ के अतिरिक्त सजावट की वस्तुए भी बिकने को आती हैं। काष्ठकला की वस्तुए भी खूब बिकती है।

बासगांव का मेला :

बासगाव गोरखपुर का एक प्रमुख स्थान है। यहा शारदीय नवरात्र के अवसर पर मुख्य रूप से दुर्गाष्टमी और रामनवमी के दिन मेला लगता है। यहां एक सुन्दर, कलात्मक पुराना मदिर है जिसमे दुर्गाजी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। दुर्गाजी को उनवल स्टेट के नेत्रवशी राजा वेलपत्र पर अपना रक्त लगाकर चढाते है जो बलि का प्रतीक हो सकता है। इस मेले मे लगभग 50 हजार दर्शनार्थी आते है। यातायात की सुविधा है। ठहरने के लिए मदिर, धर्मशाला तथा नगर के होटल है।

लेंहड़ा देवी का मेला :

गोरखपुर से गोंडा मार्ग पर 50 किमी. दूर यह मेला लगता है।



देवरिया

देवरिया महावीर स्वामी और गौतमबुद्ध की जन्म अथवा कर्मभूमि है। यह आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र भी है, अत कला और सस्कृति का यह जनपद केन्द्र रहा है। यहॉ कई मेलो-ठेलो का आयोजन समय-समय पर होता रहता है जो निम्नवत् है

सोहनाथ का मेला ·

देवरिया जनपद मे सलेमपुर थानान्तर्गत सोहनाथ नामक स्थान पौराणिक महत्व का है। कहते है परशुराम जी ने यही आकर तपस्या की थी और तपस्या भग करने वाले दुष्टजनो का सहार करने का व्रत भी यही लिया था। उनके नाम पर उस स्थान पर एक मदिर बना हुआ है, जिसमे उनकी मूर्ति स्थापित है। यहॉ एक तालाब भी है जिसमे स्नान करने से की गयी प्रतिज्ञा पूरी होती है। परशुराम ने भी तो क्षत्रियो के सहार की प्रतिज्ञा की थी।

सोहनाथ सलेमपुर से 3 किमी दूर है जहा सडक मार्ग से बस, जीप, कार आदि से जाया जा सकता है। सलेमपुर मे आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। इस मेले मे नवरात्र अथवा दशहरा के अवसर पर 25 से 35 हजार तक भीड एकत्र हो जाती है। इस मेले म स्थानीय मिठाइया, शिल्प-उद्योग की वस्तुए, टेराकोटा खिलौने तथा दैनिक उपयोग की वस्तुए बिकने के लिए आती हैं।

बाबा दुग्धेश्वर नाथ का मेला :

दुग्धेश्वर नाथ शिवजी का एक नाम है, क्योकि उन्हे दुग्ध-स्नान कराया जाता है। शिवरात्रि के अवसर पर यहा कई हजार श्रद्धालु एकत्र होकर बेलपत्र, दूध, फूल, माला चढाकर भजन-पूजन, दर्शन करते है। तीन दिवसीय इस मेले मे बेर, धार्मिक पुस्तकें, टेराकोटा, काष्ठशिल्प की वस्तुए खिलौने, विविध प्रकार की गुड, घी, डालडा की बनी मिठाइया बिकने के लिए आती हैं। यहा रूद्र महायज्ञ कई बार हो चुके है। हर वर्ष रूद्राभिषेक होता है। एक समिति बनी हुई है।

मझौली का मेला:

मझौली, देवरिया जनपद का एक प्रमुख स्थान है जहा नवरात्र मे रामनवमी के अवसर पर एक सप्ताह का मेला लगता है। यहा दुर्गाजी की भव्य प्रतिमा एक मदिर मे प्रतिष्ठापित है। यहां यातायात



तथा आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। मेले में 20-25 हजार की भीड एकत्र हो जाती है। मनोरजन के साधनो मे भजन-पूजन, प्रवचन के अतिरिक्त गीत, नाटक, चरखी, जादू, नाच के कार्यक्रम होते रहते है।

बरहज का मेला -

बरहज, देवरिया का एक प्रमुख स्थान है जो पवित्र सरयू जी के तट पर स्थित है। यहा कार्तिक पूर्णिमा के दिन बहुत बडा मेला लगता है जिसमे लगभग एक लाख तक दर्शनार्थी एकत्र हो जाते है। कहते है कि अनन्त महाप्रभु ने यही तपस्या की थी। कार्तिक पूर्णिमा के अतिरिक्त अनन्त चतुर्दशी तथा प्रत्येक अमावस्या को भी बडा मेला लगता है। अनन्त चतुर्दशी का मेला तीन दिन तक चलता है और तीनो दिन भजन-पूजन का वातावरण रहता है। लोग सरयूजी मे स्नान कर मदिर मे भगवान को जल चढाते है, व्रत रहते है। इस मेले मे जाने के लिए सभी साधन सुलभ है। आवासीय सुविधाए भी उपलब्ध है। दैनिक उपयोग की सभी वस्तुए, कला और शिल्प की वस्तुए यहा बिकने के लिए आती है। इससे आय मे वृद्धि हो जाती है। मेलो-ठेलो से यह भी एक बडा लाभ है कि छोटे व्यापारियो रिक्शेवालो, तागावालो, गांव के शिल्पियो को आर्थिक लाभ हो जाता है।



पड़रौना

कुलकुला देवी का मेला .

पडरौना जनपद मे कसया नामक एक प्रमुख स्थान है। यहा से चार किमी0 पूरब चैत्र रामनवमी के अवसर पर कुलकुला देवी धाम पर मेला लगता है। वहा सुन्दर देवी प्रतिमा स्थापित है। यहा मुख्य मेला नौ दिन का नवरात्र भर लगता है जिसमे रात-दिन दर्शनार्थियो की भीड लगी रहती है। दुर्गा-शप्तशती तथा "रामायण" का पाठ करने वाले भी भारी सख्या में पहुचते है। यहा एक लाख से भी अधिक भीड एकत्र हो जाती है। मेले मे नृत्य-सगीत, नाट्य, कथावार्ता, प्रवचन, हवन, कीर्तन भजन के कार्यक्रम चलते रहते है। यातायात और सदेशवाहन के साधनो के अतिरिक्त आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। पडरौना का यह मेला सर्वप्रमुख है।

बासी का मेला :

बासी एक नदी का नाम है जिसके तट पर क्वार माह की पूर्णिमा को मेला लगता है। इस मेले मे भी दूर-दूर से श्रद्धालु आकर स्नान, भजन, पूजन, कीर्तन मे सम्मिलित होते है। इस जनपद का यह भी बडा प्रसिद्ध मेला है। इसमे ग्राम्य जीवन की झाकी देखने योग्य होती है। गाव की महिलाए झुण्ड के झुण्ड यहा मगल-गीत गाती हुई आती है। यातायात, सन्देशवाहन, आवासीय सुविधाए सामान्य रूप से उपलब्ध हैं। शिल्पोद्योग की कलात्मक वस्तुए इस मेले मे बिकने के लिए आती हैं।

पिपरा का मेला :

पिपरा, पडरौना का प्रमुख स्थान है। यहा कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर बहुत बडा मेला लगता है जिसमे लगभग 40 हजार दर्शनार्थियो की भीड उमड पडती है। यहा स्नान, भजन, पूजन, प्रवचन का अनुष्ठान किया जाता है। मेले मे कलात्मक वस्तुए, खिलौने, गन्ना, मिठाइया, काठ की वस्तुए, बर्तन, औजार बिकने को आते है। यातायात, सन्देशवाहन, आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। यह स्थान भयमुक्त है।



बलिया जनपद

सरयू के तट पर स्थित बलिया जनपद अपनी अक्खडता, निर्भीकता, बौद्धिकता, सास्कृतिक एकता तथा साहित्य साधना के लिए प्रसिद्ध है। इसका ऐतिहासिक तथा पौराणिक महत्व है। विवरण निम्नवत है

बलिया का ददरी मेला ·

खाटी भोजपुरी के लिए बलिया, गाजीपुर, देवरिया प्रसिद्ध है। इसे भृगुक्षेत्र कहते है। गगा और सरयू के पावन धारा मे स्थित इस क्षेत्र का सास्कृतिक और पौराणिक महत्व है। यह ऋषियो-महर्षियो की तपस्थली रही है। इन ऋषियों में भृगु का नाम मुख्य है। वैसे महर्षि विश्वामित्र, परशुराम और जमदग्नि ने भी यहा अपने आश्रम बनाये थे। शुक्ल यजुर्वेद के अनुसार भृगु वैदिक ऋषि है। 'गीता' मे श्रीकृष्ण ने कहा था कि मै ऋषियो में भृगु हू। इससे सिद्ध होता है कि भृगु तपे-तपाये ऋषि थे। इन्होंने भृगु सहिता की रचना की थी। एक प्रकरण के अनुसार भृगु ने शिवजी को लिग का रूप धारण करने का शाप दिया था। ब्रह्मा द्वारा अपने को उपेक्षित महसूस किया था और विष्णु को अपने स्थान पर सोते हुए देखकर, उन पर क्रुद्ध हो कर उनकी छाती पर लात मारा थी। "पद्मपुराण" का प्रसग ऐसा है कि एक बार यज्ञ मे सभी ऋषिगण एकत्र हुए । वहा ऋषियो ने एकमत होकर भृगु को यह कार्य सौपा कि वे इस बात का पता लगाये कि देवताओ मे सबसे ऊचा चरित्र किसका है ? भृगु ने इसी प्रसग मे ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों को अनुचित अवस्था मे ही पाया था और तीनो को परीक्षा मे अनुत्तीर्ण पाया था ? तब भी पदाघात से उठे विष्णु ने भृगु के पावो को सहलाते हुए विनम्रतापूर्वक क्षमा याचना करते हुए कहा था कि कही आप के चरणो को चोट तो नही लगी। इस विनम्रता से प्रसन्न होकर विष्णु को ही मनुष्य और देवताओ द्वारा पूजा के योग्य घोषित कर दिया। किंतु पदाघात का प्रायश्चित तो भृगु को भी करना ही था। विष्णु भगवान ने एक छडी काठ की दी और कहा कि आप जाय। यह छडी जहा हरी हो जायेगी, वही आपका प्रायश्चित पूर्ण हो जायेगा। भृगु अन्यान्य तीर्थों का भ्रमण करते हुए जब गंगा-सरयू के संगम पर बलिया पहुचे तो अपनी छडी सगम पर गाड दी। गाड़ते ही छडी हरी हो गयी, तब इसी स्थान पर भृगु ने घोर तपस्या की जो भृगुक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया। भृगु ने यहां एक शिष्य-परपरा कायम की, जिनमे एक दर्दर भी थे। दर्दर ने भृगु की स्मृति मे एक मेले का आयोजन किया जिसमे तमाम ऋषियो ने भाग लिया। कालान्तर मे यह



मेला ददरी मेला के नाम से विख्यात हो गया और एक महातीर्थ का रूप भी धारण कर लिया।

यह मेला अब लगभग तीन सप्ताह तक चल कर कार्तिक पूर्णिमा को समापन पर पहुचता है। कहते है यहा गंगा-सरजू स्नान तथा भृगु आश्रम का दर्शन करने से मनुष्य जन्म-जन्म के पापो से मुक्त हो जाता है। ददरी का मेला पशु-मेला के लिए बहुत प्रसिद्ध है। यहा हाथी, घोडा, बैल, गाय, से लेकर चिडिया-पक्षी भी भारी सख्या मे बिकने के लिए आते है। यहां मीना बाजार लगती है जिसमे प्राय सभी वस्तुए खरीदी-बेची जाती है। इसके अलावा मनोरजन के साधन भी पर्याप्त उपलब्ध रहते है। नौटकी, सर्कस, नाच-गान, तमाशा, प्रदर्शनी, खेलकूद, कुश्ती, सास्कृतिक कार्यक्रम, प्रवचन, कवि-सम्मेलन, गोष्ठी, बिरहा, दगल, मुशायरा, कव्वाली आदि का वृहद् आयोजन किया जाता है, जिसे देखने-सुनने के लिए दूर-दराज के दर्शक-श्रोता उपस्थित होते हैं। इसे हम भोजपुरी क्षेत्र का सबसे बडा मेला कह सकते है। वैसे यह भारत-प्रसिद्ध मेला है।

असेगा का मेला :

असेगा एक स्थान का नाम है जो सुखपुरा थानान्तर्गत पडता है। यहा शिवरात्रि के अवसर पर सात दिन का मेला लगता है, किन्तु शिवरात्रि के दिन लाखो की भीड उमड पडती है। यहा भगवान शिव का बडा और पुराना मदिर है। महादेव को 'शोकहरण महादेव" कहकर पुकारा जाता है। यहा रूद्राभिषेक होता है। श्रद्धालु बेलपत्र, अक्षत, जल चढाकर पूजा करते है।

इस मेले मे आने-जाने के लिए यातायात के साधन सुलभ है। आवासीय सुविधा नगर मे है। यहा शिल्प, कला की वस्तुए क्रय-विक्रय के लिए आती हैं। मनोरजन के, नृत्य-सगीत, गायन के आयोजन किये जाते है। यदा-कदा चैता, होली का वृहद् आयोजन किया जाता है।

रसडा का मेला :

बलिया का रसडा एक प्रमुख स्थान है। यहा नाथ-सप्रदाय का प्रभाव है, जिसके कारण यहा नाथ बाबा का मदिर बना हुआ है जहा क्वार दशमी के दिन मेला लगता है। रामलीला का यह मेला बडा प्रसिद्ध है जिसमे 25-30 हजार का जन-समूह उमड पडता है। गांव-देहात के लोग भी आते है। मनोरजन के साधनो मे गीत, नाट्य, मदारी का खेल, जादू, कठपुतली का नाच उपलब्ध रहता है।



सिकन्दपुर का मेला :

इसे कलपा-जलपा का मेला भी कहा जाता है। कलपा-जलपा दो कन्याए थी जिनकी बलि सिकन्दर लोदी द्वारा चढ़ायी गयी थी। सन्दर्भ मे यह बताया जाता है कि सिकन्दर जब किले का निर्माण करा रहा था तो जितनी दीवार बनती, गिर जाती। फिर उसे कन्या-बलि का स्वप्न हुआ था। बलि चढ़ा दिये जाने पर किला निर्मित हुआ, जिसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान है। यही बैशाख पूर्णिमा को बड़ा मेला लगता है। उन कन्याओ की पूजा की जाती है। 15 दिन के इस मेले मे ददरी की ही तरह पशु-पक्षी बिकने के लिए आते है। हाथी तक का सौदा होता था। सास्कृतिक, सामाजिक आयोजन होते है। मेले मे बिकने वाली सभी वस्तुए यहा मिल जाती है। यातायात, सन्देशवाहन, आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। मेले से आय भी होती है जिसे सार्वजनिक हित मे खर्च किया जाता है।

सुदृष्टि बाबा का मेला :

ददरी की तरह इस मेले का भी बड़ा महत्व है। सुदृष्टि बाबा एक सत थे जिन्हे दिव्य दृष्टि प्राप्त थी। उसी से उन्होने भगवान के दर्शन किये थे। इनकी पूजा-अर्चना से खोयी हुई दृष्टि प्राप्त हो जाती है, ऐसा लोगो का विश्वास है। यह मेला बैरिया नामक स्थान पर लगता है।



बस्ती

बस्ती, गोरखपुर, देवरिया तीनो एक स्वभाव के शहर है। यहा की सांस्कृतिक परपराए महत्वपूर्ण और अक्षुण्ण रही हैं। सरयू नदी का प्रभाव-क्षेत्र होने के कारण यहा भी सभ्यताओं का उदय-अस्त हुआ है। यहा के मेले और त्यौहार प्राय धार्मिक भावभूमि पर आधारित हैं।

भदेश्वर नाथ का मेला :

पूरा पूर्वांचल आरभ से ही काशी के प्रभाव-क्षेत्र म होने के कारण शिव-साधना का और विन्ध्याचल के कारण शक्ति-साधना का केन्द्र रहा है। नगर से चार किमी की दूरी पर भदेश्वर नाथ का शिव-मदिर है जहा शिवरात्रि पर बडा मेला लगता है। यह स्थान सरयू जी के तट पर स्थित है जहा एक पुराना मंदिर है। कहते है यहा शिवजी स्वय प्रकट हुए थे। यह मेला 8 दिन चलता है जिसमे पचास हजार से ऊपर भीड एकत्र होती है। यातायात का साधन बस, रिक्शा, टैक्सी आदि है। यहा नगर के अतिरिक्त अन्य जनपदो तक के श्रद्धालु दर्शन-पूजन के लिए आते है। इस मेले में काष्ठकला, मिट्टी तथा अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुए बिकने आती हैं। गन्ना, तेलहिया, जलेबी खूब बिकती है। चरखी, नाटक, नौटकी, लोकगीत, प्रवचन के वृहद् आयोजन होते है। लकडी का खरादा हुआ चारपाई का गोडा तथा पशु भी बिकने के लिए आते है।

दुर्गाजी का मेला :

नवरात्रि के अवसर पर वर्ष मे दो बार नौ-नौ दिन का धार्मिक मेला लगता है। दुर्गाजी का नौ दिन का व्रत श्रद्धालुओ द्वारा किया जाता है। यहा इस अवसर पर भजन, कीर्तन, दुर्गासप्तशती का पाठ चलता है। इस मेले मे धार्मिक पुस्तके, खडाऊ, आसनी, चुदरी, रेहल, लकडी और प्लास्टिक के सामान खूब बिकते है। नगर मे स्थित होने के कारण यहा यातायात की कोई समस्या नहीं है। नगर मे होटल तथा धर्मशालाए आगन्तुको के लिए उपलब्ध हैं। इस मेले में प्रतिदिन एक लाख तक भीड एकत्र हो जाती है- विशेष रूप से बासतिक नवरात्रि के अवसर पर यहां वैसे भी उत्सव होते रहते है। यहा दुर्गाजी का सुन्दर पुराना, विशाल मदिर है।



मगहर का मेला :

कबीर के बारे मे जनश्रुति है कि वे अपनी भक्ति पर अटूट विश्वास के फलस्वरूप काशी छोड कर मगहर चले गये थे और कहा था-

"जो कबिरा काशी मरै,, रामहि कवन निहोर।"

यह वही मगहर है। कबीर की अतिम साधना-स्थली भी यही है। यहा कबीर का आश्रम है, मदिर है, समाधि है, जो कबीर पथियो के लिए तीर्थ है। कबीर हिन्दू-मुसलमान दोनो से पृथक एक साधक सत थे, अत हिंदू मुसलमान दोनो की उन पर समान श्रद्धा थी। इसी कारण नवरात्र के अवसर पर यहा एक ओर मेला लगता है तो दूसरी तरफ उर्स। इस मेले को भावात्मक एकता और साम्प्रदायिक सद्भावना का केन्द्र कहा जा सकता है। इस स्थान को पर्यटन का केन्द्र बनाया जा सकता है। इस स्थान को पर्यटन की दृष्टि से विकसित करने की आवश्यकता है।



भदोही (संत रविदासनगर)

भदोही सन् 1997 से पूर्व वाराणसी जनपद का हिस्सा था। बाद मे इसे रविदास नगर के नाम से अभिहित किया गया। वाराणसी का भाग होने के कारण सास्कृतिक दृष्टि से यह भू-भाग महत्वपूर्ण है। ज्ञानपुर मे कई प्राचीन मदिरो के अवशेष प्राप्त है जिनका जीर्णोद्वार जन-सहयोग से किया गया है। यहा मेलो-ठेलो का आयोजन किया जाता रहा है। ज्ञानपुर, जेसा कि नाम से ही स्पष्ट है, आरभ से ही ज्ञान का स्त्रोत रहा है। काशी नरेश द्वारा यहा समय-समय पर धार्मिक ज्ञानुष्ठान किये जाते रहे है। यहा बाबा हरिहर नाथ का मदिर है, ज्ञान-सरोवर है, दूधनाथ जी का मदिर है, काक-भुसुडी आश्रम है। इसके अलावा चकवा महाबीर, पुलिस लाइन, बिजली घर, जेल के हनुमान, भोपैला की दुर्गा जी आदि स्थलो व शिवरात्रि, बसतपचमी, नवरात्र, मकरसक्राति के अवसर पर मेला लगता है। शिवरात्रि के अवसरो पर हरिहर नाथ मदिर पर बेलवरिया लोकगीत के दंगल आयोजित होते है। शिव की अद्‌भुत बारात निकलती है।

रामलीला :

राजकीय महाविद्यालय के प्रागण मे नवरात्रि के अवसर पर रामलीला का मंचन किया जाता है जिसमे महिलाओ और बच्चो का बडा मेला लगता है। इसमे दैनिक उपयोग की वस्तुए और ग्रामीण मिठाइया, कलात्मक वस्तुए खूब बिकती है। लोग निकाले जाते है। प्रतियोगिताए आयोजित होती है।[1] यह मेला भावात्मक एकता का प्रतीक है।

कृष्णाष्टमी का मेला .

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर नौटकी, सुगम भक्ति सगीत, भजन और लोकगीत के कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। झाकिया सजायी जाती हैं।

1 विगत दस वर्षों से श्री गुलाम मुस्तफा हाशमी को प्रथम पुरस्कार मिल रहा है।



सेमराधनाथ का मेला .

जगीगज-शेरशाह सूरी मार्ग से गगा-घाट पर शिवरात्रि के अवसर पर एक बडा मेला लगता है। कहते है किसी समय यहा से एक व्यापारी नदी पार कर रहा था कि नाव रेत मे फॅस गयी। बडी मनौती और शिव-आराधना के बाद शिवजी ने स्वप्न दिया कि सेमराध मे मेरा मदिर बनवा कर मूर्ति स्थापित करो तभी तुम्हारी नाव निकलेगी। सेमराध आया तो उसने शिव का साक्षात् दर्शन किया और मदिर का निर्माण कराकर मूर्ति स्थापित की। तभी से यह आस्था और विश्वास का केन्द्र बना हुआ है। शिवरात्रि के अवसर पर यहा 40-50 हजार तक भीड उमड पडती है। प्रवचन, कीर्तन मे भाग लेने के लिए यहा संत-महात्मा, भक्तगण तथा विदेशी विद्वान भी आते है। सडक यातायात की सुविधा है।

वाल्मीकि आश्रम तथा सीतामढ़ी का मेला :

सेमराधनाथ से थोडी दूरी पर वाल्मीकि आश्रम तथा सीतामढी नामक स्थान है। यहा प्रतिवर्ष आषाढ की नौमी को तीन दिन का मेला लगता है। कहते है यही लव-कुश का जन्म हुआ था।[1] इस मेले मे 25 हजार तक भीड़ एकत्र हो जाती है। यहा "पर्यटन हट" बनने वाला है। यातायात का साधन सडक-परिवहन है। यहा शिल्प और कला की वस्तुएं बिकने को आती है।

सुरियावा का बिफइया मेला :

हल षष्ठी व्रत के अवसर पर सावन मे कजरी के बाद वाले गुरुवार को यह मेला लगता है। आज से लगभग 80 वर्ष पूर्व घिनहू शर्मा नामक व्यक्ति अपने घर हमहा-हडिया से अपनी ससुराल भोरी आया। गाव की कुमारियो ने उसे कजरी गाकर सुनाने को कहा। उसने असमर्थता व्यक्त की, लेकिन युवतियो ने विनोदवश उसकी चारपाई पलट दी और स्वय उस पर बैठ गयी। चारपाई का एक पावा उसकी गर्दन पर पड जाने के कारण उसका प्राणात हो गया। बाद मे जब युवतियो को इसकी जानकारी हुई तो वे आवाक रह गयी। बाद में वही उसकी समाधि बनवा दी गयी। तभी से कजरी के अवसर पर इस क्षेत्र की सभी स्त्रियॉ अपने मायके "भोरी" आकर इस समाधि के पास कजरी

1 *दे. मानस के हंस · अमृतलाल नागर तथा डॉ. किशोरी लाल गुप्त का शोध-सर्वेक्षण।*



गाती है। कहते है जो नही आती उनका अनिष्ट हो जाता है। यहा हरेवा और चमेली नामक युवतियो की भी पूजा की जाती है, क्योंकि घिनहू की समाधि पर उन्हीं ने पहली कजरी गायी थी।

यहा युवतियों मे कजरी-दगल होता है जिससे मारपीट, लहू-लुहान तक हो जाता है। बीच-बचाव करके उन्हें अलग किया जाता है। एक गीत की पक्तिया है-

भोरिया के माई, महजूदवा के माई,

एक चलनी पिसान देइदे, नही तोर भतार मर जाई।।

उर्स :

ज्ञानपुर मे मुसलिम धर्मावलबियो की संख्या बहुत है। स्थान-स्थान पर मजारे और मस्जिद है उर्स आयोजित होते है जिनमे मुख्य है-

हजरत सदर बालाशाह बाबा का उर्स :

ज्ञानपुर मे ज्ञानसरोवर के पीछे ईद के चाद के पश्चात् दूसरी तारीख को हजरत पुर्दू शहीद का उर्स तथा ईद के चाद के बाद ग्यारहवी तारीख को रजापुर हजरत इब्राहिम शहीद बाबा का उर्स शबेरात की पच्चीस तारीख को धानीपुर मे, हजरत सूफी अमानुल्लाहशाह बाबा जबलपुरी का उर्स जंगीगज में दो दिन का तथा उनके वालिद हजरत सफी उल्लाह का उर्स, विजयपुर में दो दिन का, इसी तरह हजरत सरपतहिया शहीद गोपीगज, हजरत घोडे शहीद, लाला नगर, हजरत मीराशाह, हजरत कल्लन शाह, भदोही तथा मतूथू, भटेवरा, कुदीपुर आदि के शहीद बाबाओ के मजार पर उर्स के मेले आयोजित होते है।[1]

हजरत सैयद सालारमकसूद गाजी सरकार का रौजा मर्यादपट्टी भदोही मे प्रतिवर्ष ज्येष्ठ माह के द्वितीय रविवार को तीन-चार दिन का मेला तथा उर्स लगता है। जितने भी जईफ बुजुर्गानदीन हैं, उनके प्रथम भक्तों में हिंदू ब्राह्मण और पण्डित ही हैं। अत इसमे हिन्दू-मुसलमान सभी श्रद्धा-भावना से सम्मिलित होते है। इस अवसर पर जादू, खेल, नौटकी, कव्वाली, लोकगीत, भजन-कीर्तन के आयोजन भावात्मक एकता के प्रतीक बन गये है।

1. स्रोत श्री राजकुमार श्रीवास्तव, ज्ञानपुर, भदोही।



अन्य मेले :

भदोही मे ज्ञानपुर से 8 किमी0 दूर चकवा महावीर जी का मेला सावन माह के अंतिम मगलवार को एक तालाब पर लगता है। यहा 3 हजार के लगभग दर्शनार्थी उपस्थित होते है।

गाजी मियां का मेला :

जेठ माह के पहले रविवार को भदोही मे गाजी मियां का उर्स लगता है जो तीन दिन तक चलता है तथा हिन्दू-मुसलमान सभी एकत्र होते है। यह यहा का प्रसिद्ध मेला है।



मऊ

दोहरीघाट का मेला :

मऊ जनपद आजमगढ का ही एक हिस्सा था। यहा दोहरीघाट नामक स्थान पर एक बडा मेला लगता है। यह स्थान नगर से 46 किमी. दूर है। यहा एक आश्रम होने की बात कही जाती है। वनवास के समय भगवान राम, जानकी और लक्ष्मण के साथ यहा आये थे और इसे आते-जाते दो बार पार किया था। इसका नाम इसी कारण दोहरी घाट पड गया।

यहा सरयू बहती है और आस-पास का प्राकृतिक दृश्य अनुपम है। यहा एक विशाल मदिर था जो नदी की धारा के कारण कटकर सरयू जी मे विलीन हो गया। इस स्थान का सबध अर्जुन से भी जोडा जाता है।

देवलास का मेला :

मऊ जनपद का यह मेला बहुत मशहूर है। ऐसी मान्यता है कि देवलास नामक स्थान पर देवल मुनि ने तपस्या की थी। यह भी जनश्रुति है कि महर्षि विश्वामित्र के साथ भगवान राम जब अयोध्या से जा रहे थे तो यही महर्षि देवल के आश्रम पर विश्राम किया था। इस तरह इस मेले का पौराणिक महत्व हो जाता है। बीस दिन तक लगने वाला यह मेला मोहम्मदाबाद-गोहना से घोसी मार्ग पर लगभग आठ किमी0 दूर है। यह मेला कार्तिक शुक्लपक्ष सुदी छठ से प्रारभ हो जाता है। यहा पहुचने के लिए यातायात की सुविधाए उपलब्ध है। आवासीय व्यवस्था मदिर मे, आश्रम मे, अन्यथा नगर मे है।

इस मेले मे कला, शिल्प, प्रस्तर, मिट्टी, काष्ठ, सीक की वस्तुए बिकने के लिए आती है। मनोरजन के लिए भजन-कीर्तन, यज्ञ, रामायण, गीत, नाट्य, जादू, वाद्य, यदा-कदा कुश्ती के आयोजन होते है। इस मेले से व्यापारियो की आय बढ जाती है। इस मेले मे घोडे बिकने के लिए आते है। इस मेले की सबसे बडी विशेषता है कि प्रत्येक धर्मो, सम्प्रदाय के प्रतीक एक जगह स्थापित है जिसके कारण हर धर्म, जाति सम्प्रदाय के लोग यहा बेरोकटोक पहुचते है।

वनदेवी का मेला :

मुख्यालय से लगभग 12 किमी. दक्षिण मे यह स्थान भैसही नदी के समीप पडता है। यहा चैत्र मास की रामनवमी पर एक दिवसीय मेला लगता है। यहा एक तालाब भी है, कहते हैं, देवी की मूर्ति उसी तालाब के बीच से निकली थी। यहा पहुचने के लिए रेल, सडक यातायात है। यहां सस्कृत



महाविद्यालय और रेंज कार्यालय है।

इस देवी की जनपद मे बडी मान्यता है। 'हल्दी घाटी" के रचनाकार श्री श्यामनरायण पाण्डेय यहा प्रतिदिन देवी का दर्शन करने जाते थे। उन्होने "हल्दी घाटी" के मगलाचरण मे वनदेवी को भी नमन किया है।

त्रिमोहानी का मेला :

यह स्थान मुख्यालय से लगभग 8 किमी0 दूर उत्तर-पश्चिम की ओर सरोजगाव के समीप स्थित है। यहा कार्तिक पूर्णिमा के दिन बडा मेला लगता है जिसमे दस हजार की भीड एकत्र हो जाती है। यही पर छोटी सरयू टोस में आकर मिली है। सगम पर स्नान, दान, पूजन करके लोग मदिर मे प्रवेश करते है।

नदवासराय का मेला :

यहा पशु मेला लगता है। बैलो की बडी सख्या में बिक्री होती है। यह वैसे तो साप्ताहिक लगता है किंतु कार्तिक मे पूर्णिमा पर बडा मेला लगता है।

महराजगंज के लेहड़ा देवी का मेला :

फरिन्दा से लगभग 26 किमी. दूर लेहडा देवी का प्रसिद्ध मंदिर है। यहा दोनो नवरात्र के अवसर पर नौ-नौ दिनो का मेला लगता है जिसमे लगभग एक लाख जन दर्शनार्थ आते है। यातायात और आवासीय सुविधाए उपलब्ध हैं। सडक पक्की है। बस का साधन है। इस मेले मे ग्रामीण शिल्प और कला की वस्तुएं बिकने के लिए आती है। देवी को नारियल, इलायचीदाना, चुदरी चढाने की परंपरा हे। पशु-बलि भी यदा-कदा दी जाती है। मनोरजन के साधन उपलब्ध रहते है।



मिर्जापुर

अष्टभुजा का मेला :

विन्ध्याचल धाम से लगभग 2 किमी दक्षिण-पश्चिम की ओर पहाडी के ऊपर अष्टभुजी देवी का मदिर है। एक उल्लेख के अनुसार यहां अष्टदल कमल अच्छादित है, इसके ऊपर सोलह दल है। बीच मे एक बिन्दु है, जिसमे ब्रह्म-रूप मे महादेवी अष्टभुजा निवास करती है। यह अपनी अष्टभुजाओ से सब कामनाओ को साधती हुई सम्पूर्ण दिशाओ मे स्थित भक्तो की आठ भुजाओ से रक्षा करती है। महामाया नंद की पत्नी यशोदा के गर्भ मे प्रवेश कर ससार के कल्याणार्थ भादो बदी अष्टमी को अष्टभुजी देवी अर्द्धरात्रि मे प्रकट हुई थी। वसुदेव जी कस के कारागार से मायावश मुक्त होकर श्रीकृष्ण को ब्रज मे पहुचा कर यशोदा की कन्या जो महामाया अष्टभुजी देवी विन्ध्यपर्वत पर आकर आसीन हो गयी थी। वही पर समस्त देवता अपने-अपने अश से महामाया की सेवा करने लगे। इसके बाद से गन्धर्व, यक्ष, ऋषि-मुनि सभी इस क्षेत्र को तपोभूमि मानकर निवास करने लगे। तभी से यह स्थान पौराणिक महत्व का हो गया। अब यहा उक्त तिथि को बडा मेला लगता है जिसमे पहुचकर हजारो हजार नर-नारी, आबाल, वृद्ध अपना मनोरजन तो करते ही है, श्रद्धा-भक्ति भी मा के चरणो मे अर्पित करते है। यह स्थान काफी ऊचाई पर होने के कारण स्वास्थ्यलाभ के लिए भी अत्यत उपयोगी है। यहा सरकारी अतिथि गृह बनवा दिया गया है जिसमे बडे राजनेता, अधिकारी आते रहते है। इसी के आस-पास सीताकुण्ड, काली खोह, गेरूआ तालाब नामक स्थान है जहा अनेक मदिर तथा तीर्थ अवस्थित है।

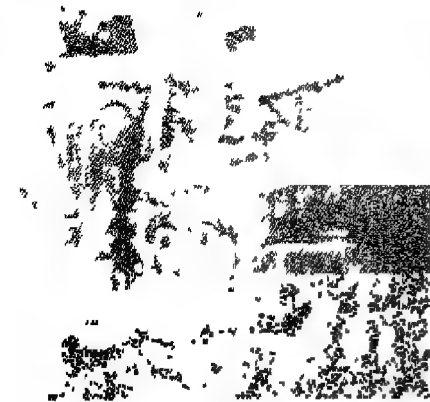
दुर्गाजी (चुनार) का मेला :

चुनार तहसील मे मिर्जापुर-वाराणसी मार्ग पर मुख्य मार्ग से एक किमी. दक्षिण एक नाले के समीप प्रसिद्ध दुर्गाजी का मदिर है। कहते है आल्हा-ऊदल को ये ईष्ट थी। यहा श्रावण मास के प्रत्येक मगलवार को लिट्टी-बाटी का मेला लगता है। यहां एक शिलालेख भी है। एक बावली है जिसमे गोता लगाया जाता है। कुछ लोगो के अनुसार यह इक्यावन सिद्धपीठो मे से एक है। हजार वर्ष पुराना यह मेला नवरात्र मे भी लगता है।



मेले में लोकनर्तक

मेले मे श्रवण कुमार की गाथा गाते कलाकार



ल शिव-पूजन   शिवरात्रि व्रतोत्सव



नवरात्र मेले का एक दृश्य



मेला की संस्कृति



विन्ध्यवासिनी देवी (शक्तिपीठ)



गंगा-पूजन



ओझला (पुण्यजला) :

ओझला पुण्यजला का बिगडा हुआ रूप है। यह एक नाला है जो मिर्जापुर नगर से पश्चिम विन्ध्याचल से एक किमी. पूर्व स्थित है। इसका जलस्त्रोत विन्ध्य की पहाडिया है। यही पर इसकी धारा गगा जी मे उत्तर वाहिनी होकर विलीन हो जाती है। गगा जी मे मिलने के कारण इसका नाम पुण्यजला हो गया है। इसके बारे में कहा गया है कि जैसे सब यज्ञो मे अश्वमेघ, पर्वतो मे हिमालय व्रतो मे सत्य, दानों मे अभयदान उत्तम है, उसी प्रकार तीर्थों मे पुण्यजला सर्वश्रेष्ठ है।[1] इसके सगम-स्थल पर बावन भगवान का मदिर तथा विध्याचल की त्रिकोश-यात्रा के महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती के अतिरिक्त पास ही मे भैरवनाथ के तीर्थ तथा मंदिर है।

यहा भाद्रपद शुक्ल द्वाद्वशी को तथा कजरी के अवसर पर अर्थात भाद्रपद की कृष्ण प्रतिपदा को भी मेला लगता है। कजरी पर तो स्त्रियो का विशेष मेला लगता है। उल्लेखनीय है कि बावन द्वाद्वशी को बावन भगवान का अवतार हुआ था, राजा बलि को दण्ड देने के लिए उन्होने बावन वेश मे प्रकट होकर तीन डग मे त्रैलोक्य नाप कर राजा बलि के पद को नष्ट कर दिया था। यहां उनके नाम का एक कुण्ड भी है जिसका जल अनेक रोगो से मुक्ति दिलाने वाला माना जाता है। यही पर नदी से पश्चिम बावन घाट की बावली है। इस कुण्ड मे श्रावण शुक्लपक्ष की पचमी (नागपचमी) को स्नान करने से अच्छे पुण्य की प्राप्ति होती है। ओझला से पूरब में नागेश्वर नाथ का मदिर नागवंशियो द्वारा स्थापित बताया जाता है। इसी के पास मे उत्तर की ओर दानइया का दुर्ग कच्ची ईंटो का बना है, जिसका अधिकाश भाग गगा मे विलीन हो चुका है। इसी के पास मे कतित का उर्स मेला लगता है।[2]

कहने का तात्पर्य यह कि यह स्थान प्रकृति के सुरम्य वातावरण मे स्थित है जो धार्मिक, सास्कृतिक पौराणिक और सामाजिक, हर दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यहा नौकायन की प्रतियोगिता तथा कजरी दगल का आयोजन किया जाता रहा है।

ओझलापुल का निर्माण मिर्जापुर के एक व्यवसायी ने रूई के एक दिन के मुनाफे से कराया था। इस पुल मे अनेक तहखाने हैं। पत्थर से निर्मित यह पुल बहुत मजबूत है। यह पिकनिक स्पाट भी है। गण्डेविया साहब कलेक्टर के समय मे यहां कमिश्नरी स्तर के कजरी-दगल का आयोजन

1 नगरपालिका के 105 वर्ष अमर गोस्वामी - पृ. 5
2 दे कतित का उर्स



अग्रेजो के जमाने मे किया गया था। पुल के ऊपर से गोताखोर ओझला मे गोते लगाते है जब गगा की धारा के कारण नाले का जल-स्तर बढ जाता है।

कजरी-मेला

कला जीवन की अनिवार्यता है तो लोककला लोकजीवन की। चौसठ कलाओ मे अधिकतर लोककलाए ही है। काव्यकला ललित होने के कारण उत्तम कला है। कजरी लोक-काव्य-कला है। इसमे साहित्य, सगीत और कला तीनो की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। अत कजरी को उत्तम कोटि की कला विधा माने तो कह सकते है कि कजरी लोकजीवन की अनिवार्यता है अथवा लोकजीवन कजरी की भी अनिवार्यता है। क्योकि प्रत्येक लोककला मे जीवन की अभिव्यक्ति होती है और वह सत्य तथा यथार्थ पर आधारित होता है। चूकि इसका उद्‌भव और विकास लोक से लाक मे होता है, अत लोकमगल की शाश्वत कामना इसमें निहित रहती है।

कजरी की तो उत्पत्ति ही लोक से हुई है। किवदन्तियो म राजकुमारी का रोचक प्रसग तथा माँ विन्ध्यवासिनी के उपनाम 'कज्जला देवी' से सबधित कथा का उल्लेख विशेष रूप से होता आ रहा है। कहते है यह विशेष गीत छद मा विन्ध्यवासिनी को प्रसन्न करने के लिए किसी मुसलमान शायर द्वारा रचा गया था। कजरी शैली मे रचे गये इस गीत को सुनकर मा ने भक्त शायर को वरदान दिया था कि जो भी इस शैली में गीत रचकर उन्हे सुनायेगा, उसे उनकी भक्ति सहज मे ही प्राप्त हो जायेगी। तभी से हिन्दू हो चाहे मुसलमान, अमीर हो चाहे गरीब, किसी भी जाति-धर्म का क्यो न हो, किसी भी अखाडे का क्यो न हो, जब भी वह किसी अखाडे मे सम्मिलित होगा, पहला कजरी गीत वह मा विन्ध्यवासिनी के प्रति ही लिखेगा। वह मा के झरोखे से उनका दर्शन करेगा उन्हे प्रसाद चढाकर बांटेगा और काजल का टीका लगाकर मां को शीश झुकायेगा। इन सभी प्रसगो में लोकजीवन की ही अभिव्यक्ति मिलती है। कवि श्रीकृष्णलाल गुप्त की मां विन्ध्यवासिनी के प्रति रची गयी कजरी की पक्तिया प्रस्तुत हैं--

"हमरे माई के बखरिया, रतन छतरी।
चनन केवरिया कलस देहरी।।
अचरा के छहिया अमिय रस बरसे।
तपसी सिवनवां अमर फल परसे।



सुरजू चनरमा रहेन प्रहरी।

हमरे माई के बखरिया रतन छतरी।"

स्नेह, दया, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, परोपकार, परहित-रक्षा, सत्य, अहिंसा, सद्भावना, सदाचार, सद्व्यवहार, सहृदयता, गो-ब्राह्मण बाल-स्त्री रक्षा, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, त्याग बलिदान, जनकल्याण आदि शाश्वत् मानव-मूल्य है। आज के मूल्यो मे अस्पृश्यता निवारण साक्षरता, पर्यावरण, परिवार नियोजन, स्त्री-शिक्षा, परिश्रम, अनुशासन, अंधविश्वासों का निवारण, जन-जागरण आदि मुख्य है। कजरी गीतो मे इन तमाम मूल्यों-मान्यताओ की स्थापना का सार्थक, उपयोगी और व्यावहारिक प्रयास कजरी के रचयिताओ द्वारा आरभ से ही किया जाता रहा है। गोदना भी लोकजीवन की एक अनिवार्यता थी। एक विश्वास के अनुसार गोदना ही अगले जन्म का साथी है, बाकी चीजे तो यही धरी की धरी रह जाती है। मोहनलाल ने कजरी धुन मे राष्ट्रीय भावना का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है-

"कर मे हमरे गोदनहारिन सुघर गोदनवा गोदो।

नेहरू आनन्द भवनवा गोदो ना।

खिला हो मुखडा कमला नेहरू का।

सुघर रूप रगवा गोदो।

गये हो नेहरू अमेरिका

कनेडी के सगवा गोदो।

घहर-घहर कर लडत वीर हो,

काश्मीर के सीमवा गोदो।"

प्रेमधन बदरी नारायण चौधरी, उपाध्याय और भारतेंदु बाबू हरश्चिद्र को साहित्यिक कजलियो का जनक माना जा सकता है। उन दिनों सावन-भादव मे साहित्य के ये दोनो अन्तरग मित्र और महारथी मिर्जापुर-वाराणसी एक-दूसरे के यहा आते-जाते थे। कजरी की समस्या पूर्तिया होती थी। दरबार लगता था। कलाकारों को प्रोत्साहित करने के लिए कजरहवा, पोखरा, त्रिमुहानी, ओझलापुल, पक्काघाट, बजडे पर गगा की धारा, लोहदी महाबीर, टाडापाल आदि मे मेलो-ठेलो का आयोजन किया जाता था। कजरी लड़ाई जाती थी। कजरी में सवाल-जवाब होता था। इन सबका चित्रण कजली गीतो में हुआ है। जैसे-



"मासहु सरस सुहावन, गिरिवर विन्ध्याचल पै रामा।

हरि-हरि मिर्जापुर की कजरी लागै प्यारी रे हरी।।

हर मगल त्रिकोण का मेला, होला अजबरसीलारामा।

हरि हरि जगल मे है मगल की तैयारी रे हरी।।"

और मिर्जापुरी लोकमस्ती देखिये-

काली खोह छानि कै बूटी, गुण्डे तान उडावै रामा-

हरि हरि अष्टभुजा पर भयलीं भिरिया भारी रे हरी।"

इसी प्रकार सीख की बाते भी बतायी गयी है। सीताराम द्विवेदी 'समन्वयी' की एक कजरी की कुछ पक्तिया देखिये जो नशाबदी के महत्व पर प्रकाश डालती है। शराबी पति घर बर्बाद कर देता है। जनकवि दूध और शराब का अतर स्पष्ट करता हुआ कहता है-

"हरि-हरि बिगड गयल मोर घरवा,

मिलल शराबी रे हरी।

काम धाम सब छोड छाड के,

भट्ठी पर जुट जाला रामा।

हरि हरि छोड सरबिया,

पियऽ दूध मनमाना रे हरी।"

इसी प्रकार भाई-बहन के प्रेम का वर्णन देखिये- कजरी-तीज पर भाई की याद, नैहर के अन्य सदस्यो की याद आनी स्वाभाविक है। ननद-भौजाई के बीच के वार्तालाप की पक्तिया है--

"साझे कइहं भउजी खिचरी फकउतिउ,

सबेर अइहै ना।

मोरा भैया अलबेलवा सबेर अइहै ना।"

और उत्तर कि --

"सांझे क खिचडी जुडाई ननदी,

तोर भइया फडेबजवा, नाही हो अइहैं ना

साझे कहइ भउजी जलवा भरउतिउ,



सबेर अइहै ना।

मोर भइया अलबेलवा सबेरे अइहै ना।"

और फिर इसी प्रकार मिर्जापुरी ठाठ तो देखिये। वर्षा के दिन भी क्या दिन है। रिमझिम फुहारो के सग या बाद मे पति-पत्नी बाहरी तरफ निकल जाते है और क्या-क्या देखते है-

"पिया हमके घुमावै कई मील सखी

चढके साइकिल सखी ना।

देखा खजुरी क बाध,

बहुत दिन से रहा साथ।

जल अगाध भरा जैसे,

लगै झील सखी।

चढके साइकिल सखी ना।"

कजली लोकजीवन की अनिवार्यता है और लोकजीवन कजरी की भी अनिवार्यता है। क्योकि उसमे सब कुछ लोकपरक लोकोपयोगी और लोकानुरंजन के लिए होता है। उसमे एक साथ राष्ट्रीय चेतना, प्रेरक प्रसंग, सस्कृति-दर्शन, प्रकृति-चित्रण, झूलावर्णन, श्रृगार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, गरीबी, पौराणिक आख्यान, समाज-सुधार ,त्याग, समर्पण, पारिवारिक जीवन की सूक्ष्म बातों का भी चित्रण रहता है। गरीबी मे सुख की सच्ची अनुभूति का चित्रण इन चार पक्तियों मे देखिये--

"गोरिया कहै दुलराय, पियवा के गले लगाय,

हमके बेसर दे गढाय, लहरेदार बलमू।

लेवै झुलनी बुलाक, झुमका टीका बुन्दाबाक,

छू छू किलिया बिना नाक बा हमार बलमू।"

स्पष्ट है कि सुख धन-सम्पत्ति से नही, सुख पारिवारिक जीवन से मिलता है। छोटा, सुखी, हँसता-खेलता परिवार ही धरती का असली स्वर्ग है। तमाम काण्ड करके, अरबों एकत्र करके भी क्या यह सहज सुख देश-समाज के उन गद्दारो को मिल सकता है ? कदापि नही, यह तो जगल, पहाड, गाव-गिरांव में सीमित साधनो मे जीवन जीने वालों को ही नसीब हो सकता है। एक गरीब आदिवासी के उस सुख को क्या महलों का आदमी बादशाह पा सकता है जो दिन भर श्रम करने के बाद वह अपनी राम मडैया मे आते एक ही मोटी लिट्टी या एक थरिया भात पूरे परिवार के साथ



मिल-बाट खा लेता, कथा-कहानी, कहते-सुनते, मैरा पर कजरी, बिरहा, लोरिकी, विजयमल के गीत गाते काठ की चारपाई या तख्त पर सो जाता। पत्नी भी पाव दबाते वही लुढक जाती।

तात्पर्य यह कि कजरी मे सब कुछ लोकपरक है। उसकी लय धुन भाषा, भाव, विषयवस्तु सब कुछ लोक से उद्‌भूत है, लोक के लिए है, लोकानुरंजन के लिए है और लोक का पुराणोतिहास है।

कजरी लोकजीवन की आत्मा और कजरी की आत्मा भी लोकजीवन है। यह इस बात से ही स्पष्ट है कि कजरी की धुने भी लोक से ही ग्रहण की गयी हैं। जैसे- अरे रामा, हे हरी, सावरिया, सावर गोरिया, ना, बलमू, जिरवा, झालरिया, पडेला झीरझीर बुनिया, ललना, विरनवा, लोय आदि। इसमे खादी, लिट्‌टी-बाटी, लोकरग, लोकढग, लोकरुचि, लोकवार्ता को ग्रहण किया गया है। स्वतत्रता आन्दोलन के प्रसंग मे गांधी जी के खादी आन्दोलन तक को समेट लिया गया है। स्वतत्रता आन्दोलन मे कजरी के माध्यम से जन-जागरण में मदद मिली थी। तात्पर्य कि कजरी लोक-मानस की अक्षय निधि है। उसके गायन, अखाडे और दगल की परपरा समाप्त होने की कगार पर है। किन्तु आज भी लोककण्ठ का श्रृगार बनी कजरी के बडे पैमाने पर सग्रह की आवश्यकता है। उसे प्रोत्साहित कर जन-जागरण का काम लिया जा सकता है।

लोंहदी महावीर :

श्रावण मास के प्रत्येक शनिवार को लोंहदी महावीर का मेला लगता है। वैसे प्रत्येक मगलवार को भी सैकडो दर्शनार्थी भक्तगण महावीर जी के दर्शन के लिए जाते है। प्रत्येक रविवार को बदी के दिन भी तफरी के लिए सेठ-साहूकार तथा भावुकजन वहां जाकर लिट्‌टी-बाटी का आयोजन करते है। यह स्थान नगर से दक्षिण मे लगभग पाच किमी पडता है। तथा बहुत रमणीक है। प्राकृतिक शोभा निराली है। नदी भी बहती है। कहते हैं, अपने भक्त को एक रात महावीर जी ने प्रकट होकर दर्शन दिया था और भयकर वेग से बहती नदी मे जब वे भी बहने लगे तो उनकी भक्ति भावना को देखते हुए अपने भक्त को राम-भक्त महावीर ने उबारा था।

अन्य मेले :

प्रत्येक मंगलवार तथा शनिवार को अष्टभुजा तथा मा विन्ध्यवासिनी के धाम में मेला लगता है। इसी प्रकार प्रत्येक रविवार को विढम तथा टाडाफाल खजुरी नामक स्थानो पर भारी सख्या मे



लोगो की उपस्थिति के कारण मेला का दृश्य उपस्थित हो जाता है। अष्टभुजा त्रिकोण-यात्रा का प्रमुख स्थल है जहा अष्टभुजी देवी विराजमान है। पहाड पर स्थित होने के कारण इसका वातावरण अत्यत मनोरम हो गया है। यही सीताकुण्ड भी है जिसका सतत् प्रवाहित जल आरोग्यवर्द्धक बताया गया है।

टाडाफाल नगर से लगभग दस किमी. दक्षिण मे स्थित है जहा झरने का दृश्य मनोरम है। यहा पहले जगली जानवर रात मे पानी पीने आया करते थे। नगर के साहित्यकार पहले यहा तफरी के लिए जाया करते थे तथा गोष्ठियो का आयोजन करते थे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमधन, उग्र, निराला, मतवाला की अलमस्ती के दर्शन यहा होते थे। भाग छनती थी। बाटी-चोखा विधिवत बनता था। अग्रेज अफसर भी यहा जाया करते थे।

इसी प्रकार विढमफाल मे भी रविवार को मेला लगा करता था। यहा भी तफरी के लिए नगरवासी आते थे और मेले का दृश्य उपस्थित हो जाया करता था। खजुरी-अपर तथा लोवर-विढमफाल से पश्चिम की ओर स्थित वह स्थान है जहा नदी को रोककर बाध बनाया गया है। चारों ओर जगल-पहाड का सुन्दर दृश्य देखते बनता है। यहा पहले हिरणो का झुण्ड देखने को मिलता था। लोग शिकार के लिए भी जाया करते थे। तरह-तरह के पशु-पक्षियो को देखने के लिए भी भीड उपस्थित हो जाती थी। किंतु अब बढती व्यस्तता तथा प्रदूषण, वन-कटान के कारण प्राकृतिक सौदर्य विनष्ट होता जा रहा है। वास्तव मे इन स्थानो को पर्यटन स्थल के रूप मे विकसित करके बसो के चलने की व्यवस्था की जानी चाहिए। एक बार रोडवेज की बस चलायी भी गयी थी।

घंटाघर पक्काघाट :

गगा-तट पर जितने नगर बसे है, उन सबमे मिर्जापुर का पक्काघाट और घण्टाघर बेजोड है। ये दोनो वास्तुशिल्प के अद्भुत नमूने है। मिर्जापुर नगर पालिका के एक सौ पाच वर्ष मे उल्लिखित विवरण के अनुसार 1867-68 मे यहा का टाउन हाल तथा घण्टाघर निर्मित हुआ था। इसमे गुलाबी, हरे तथा लाल रंग के पत्थरो पर भीतर, बाहर, नीचे से ऊपर तक नक्काशी, पच्चीकारी की गयी है। एक-एक इच पर कला का रूप देखने को मिलता है। तभी से घडी मे आज तक खराबी नही हुई। कहते है यह घण्टाघर इतना बढ़िया बनाया गया था कि मुख्य मिस्त्री का हाथ कटवा लिया गया ताकि वह किसी अन्य स्थान पर ऐसी भव्य इमारत न खडी कर दे।



पक्काघाट भी ऐसा ही है। उसकी पच्चीकारी भी अनोखी है। काशी मे भी ऐसा कोई घाट नही है। यहा हजारो नर-नारी एक साथ बैठकर आनद ले सकते है, प्रवचन सुन सकते हैं, नदी की धारा का प्रवाह देख सकते है। इसी कारण श्रावण भर यहा मेले का ही दृश्य उपस्थित हुआ रहता है। गोताखोर यहा गोता लगाने आते है, उनकी प्रतियोगिताए आयोजित होती है। नौकायन का आयोजन किया जाता है। "उग्र" की भाग यही छनती थी और बजडे पर गोष्ठिया होती थी। यदा-कदा यहा से चुनार तक की यात्रा नाव से की जाती थी।

पक्काघाट में स्त्रियों का मेला लगता है। प्रत्येक पर्व पर यहा भारी भीड एकत्र होती है। यहा स्त्री और पुरुष दोनो के लिए अलग-अलग घाट बने हुए है। श्रृगार प्रसाधनो के लिए स्त्रियो का घाट मशहूर है। यहां पतंग भी उडाई जाती है। खिचडी के अवसर पर पतग की प्रतियोगिताएं आयोजित होती है जिसे देखने के लिए नगर के अधिकतर प्रबुद्ध, प्रतिष्ठितजन एकत्र होते है। यहीं पर गगा दशहरा, बावन द्वादशी, रक्षाबधन, कजरी, भरतमिलाप के अवसर पर भी मेलो-ठेलो का आयोजन किया जाता है।

विंध्याचल का नवरात्र मेला :

भारतीय धर्म-साधना मे दुर्गापूजन का बडा महत्व है। इसके लिए वर्ष में दो नवरात्रो का समय सबसे शुद्ध पवित्र माना जाता है। पहला चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक बासतिक नवरात्र तथा दूसरा आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक शारदीय नवरात्र। इन दोनो नवरात्रो में क्रमश नौ दिनो तक नव दुर्गाओ- शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कुष्मांडा, स्कन्दमाता (बागेश्वरी), कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री की पूजा का विधान है। इस अवसर पर कुमारी-पूजन का भी बहुत महत्व है। दो वर्ष की बालिका कुमारी, तीन वर्ष की त्रिमूर्तिनी, चार वर्ष की कल्याणी, पांच वर्ष की रोहिणी, छह वर्ष की काली, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाभवी, नौ वर्ष की दुर्गा तथा दस वर्ष की सुभद्रा स्वरूप होती है। इससे ऊपर की अवस्था की बालिका का पूजन शास्त्र-वर्जित है। इन वय वर्ग की कन्याओ के पूजन से क्रमश ऐश्वर्य, भोग, मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम, राज्य, विद्या, सिद्धि, राज्य-सम्पदा और पृथ्वी की प्राप्ति होती है। इसी कारण भारतीय संस्कृति मे बालिकाओं को बालक से भी ऊचा स्थान प्राप्त है। यह अपसस्कृति का प्रभाव है कि अब बालिकाओं के जन्मदिन पर लोग खुशिया नहीं मनाते।



विन्ध्याचल की मान्यता शक्तिपीठ और देवीधाम के रूप मे ऐतिहासिक हो गयी है। मा महिषासुर मर्दिनी है। पौराणिक आधार है कि महिषासुर ने एक बार सभी देवताओ को पराजित करके इन्द्रलोक पहुच कर इन्द्र को भी भयाक्रात कर दिया। इन्द्र भगवान भाग कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश के पास गये। तब त्रिदेवो ने आदिशक्ति भगवती का ध्यान किया। तब देवताओ के अगो से तेज-पुज निकला जिसे सहन करना कठिन हो गया। इसके बाद देवताओ ने पुन प्रार्थना की जिससे एक सुन्दर, दिव्य त्रिनेत्र अष्टभुजी शक्ति का प्राकट्य हुआ जिसकी सभी देवताओ ने मिलकर पूजा की और विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र, शिव ने त्रिशूल, इन्द्र ने ब्रज, वरुण ने शक्ति, यमराज ने तलवार, अग्निबाण, लक्ष्मीजी ने श्रृगार तथा हिमालय ने सिह देकर मा को सुसज्जित कर दिया। मा ने इन आयुधो से पहले महिषासुर के दैत्यदल को, बाद में महिषासुर को भी कालपाश मे लपेट कर पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी गर्दन पर पाव रखकर चमकती तलवार से उसके सिर को काट डाला और इस प्रकार देवताओ का कष्ट-निवारण करने के कारण पूज्या हो गयी।

नवरात्र तथा दुर्गापूजा के अवसर पर तभी से देवी की पूजा का विधान है जो अद्यावधि चल रहा है। देवी-पूजा की परपरा बगाल से चली थी जो हिमालय, कश्मीर, मैहर, विंध्याचल तथा अन्य स्थानो तक लोकप्रिय, लोकमान्य हो गयी।

विन्ध्यक्षेत्र मे विध्याचल पहाड के ऊपर मा विंध्यवासिनी, महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती के रूप मे त्रिकोण यात्रा द्वारा पूजी जाती है। यहां की पहाडी पर और भी देवी-देवताओ की मूर्तिया प्रतिष्ठित हैं जिनमे कालभैरव, लोहदी महादेव, अष्टभुजी, शिवपुर के शिव, नारघाट के शिव-पार्वती, गयाघाट की देवी सहित शताधिक तीर्थ तथा मदिर वर्तमान है।

देवीधाम मे दोनो नवरात्रो पर बडा मेला लगता है जिसमे देश-विदेश तक के श्रद्धालु, भक्त, पडित, तांत्रिक मां विन्ध्यवासिनी की पूजा के लिए आते और नौ दिनो तक अनुष्ठानपूर्वक दुर्गाशप्तशती का पाठ करते है। यहा नारियल, चुनरी, इलायचीदाना, मिष्ठान, जौ, चावल, धान का लावा चढाया जाता है। कजली गायक कजरी के अवसर पर मा की पूजा करते है। मां का एक नाम कज्जला देवी भी है। कहते है एक मुसलमान ने मां को कजरी छन्द लिखकर प्रसन्न किया था, तभी से प्रत्येक कजरी गायक अपना पहला गीत कजरी छन्द में लिखकर मा को समर्पित करता और काजल का टीका लगाता है। यह मेला इसी कारण हिन्दू-मुसलिम एकता का भी प्रतीक बन गया है।



शिवशंकरी धाम :

चुनार से वाराणसी जाते समय नरायनपुर से पहले शिवशकरी धाम नामक स्थान पर भगवती पार्वती की मूर्ति स्थापित है जहा बासतिक नवरात्र के अवसर पर तीन दिवसीय बडा मेला लगता है। यहा काशी, मिर्जापुर, अहरोरा तक के मेला-दर्शक आते है। यह बहुत पुराना मेला है।

अहरौरा की दुर्गा जी का मेला :

अहरौरा मे बधा के पास आधा किमी पश्चिम दुर्गा जी का पवित्र स्थान है। यहा दोनो नवरात्र तथा सावन के प्रत्येक मगलवार को बडा मेला लगता है। कहते है यह मूर्ति अपने आप प्रकट हुई थी। यह भी इक्यावन शक्तिपीठो मे से एक है। यातायात, सदेशवाहन, आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर ठाकुर जी का रथ निकलता है। पूरी रात कजली-बिरहा गाया जाता है। कुश्ती-दगल भी होता है।

अन्य मेले

अहरौरा मे बूढादेई तथा पहाड पर दो और बडे मेले लगते है। यहा अशोक कालीन प्रसिद्ध स्तम्भ शिलालेख है। सावन मे यहा मेला लगता है। ऐतिहासिक महत्व का स्थान है।

शिवपुर और तारकेश्वर महादेव :

विन्ध्याचल से एक किमी. पश्चिम मे शिवपुर नामक स्थान है जिसके बारे मे कहा जाता है कि एक बार वशिष्ठ मुनि ने पृथ्वी पर भ्रमण करने वाले नारद जी से पूछा कि पृथ्वी पर सबसे उत्तम क्षेत्र कौन सा है ? तो नारद जी ने कहा कि इस ब्रह्माण्ड मे विन्ध्यक्षेत्र सर्वोत्तम है। इसी विध्यक्षेत्र के शिवपुर का रामेश्वर मंदिर तथा उसमे श्री राम द्वारा प्रतिष्ठापित शिवलिग आज भी लाखो-लाख जनता की श्रद्धा का केन्द्र बना हुआ है। वास्तव में विध्यक्षेत्र बहुत विस्तृत है, किंतु उसमें बिरोही से तरकापुर तक का लगभग पन्द्रह किमी. क्षेत्र मे अगणित मदिर तथा तीर्थ आ जाते है। श्रीराम ने रामेश्वर से उत्तर गगा-तट पर रामगया मे अपने पिता का श्राद्ध तर्पण किया था। इस प्रकार इसका पौराणिक महत्व होने के कारण आज भी मेलों-ठेलों का आयोजन किया जाता है।

शिवपुर मे विशाल शिवलिग, नन्दी तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तिया स्थापित है। इनकी



पूजा गोस्वामी लोग करते है। शिवरात्रि तथा वसत पर मेला लगता है। यह स्थान बहुत शात-एकान्त वातावरण मे स्थित है। दाहिने हाथ दक्षिण की ओर अष्टभुजी देवी महाकाली, पूरब विन्ध्यवासिनी स्वय, उत्तर मे रामगया तथा भागीरथी विराजमान है।

मिर्जापुर नगर के मध्य गगातट पर तारकेश्वर नाथ का मदिर है। यहा कुल 108 शिवमदिर थे जिनमे से अनेक गगा की धारा मे समाहित हो चुके हैं। भगवान श्रीराम ने रामेश्वरम् की स्थापना करके यहा आकर दर्शन किया था। यहा भी बडा मेला लगता है जिसमे शिल्पकला की वस्तुए मिट्टी के पात्र विशेष रूप से बिकने के लिए आते है। यहा बरियाघाट मे और भी अनेक विशाल मदिर है जिनमे अधिकतर शिव-प्रतिमाए प्रतिष्ठित है।

मिर्जापुर आरभ से ही लक्ष्मीजी की कृपा का पात्र रहा है। यह वैभव की नगरी रही है। बर्तन, लोहे रेशम, कत्था, गलीचा तथा सभी वन्य उपजो का व्यापारिक केन्द्र भी रहा है, अत यहा तथा इस क्षेत्र मे बडे-बडे सेठ-साहूकार आते रहे और उन्होने मदिरो का निर्माण कराया। इस प्रकार काशी और प्रयाग से कम मदिरो का निर्माण यहा नही हुआ। काशी और प्रयाग दो महातीर्थों के बीच देवीधाम होने के कारण भी इस स्थान का महत्व कदापि कम नही हुआ। यही कारण है कि यहा चप्पे-चप्पे पर आये दिन मेलो-ठेलों के आयोजन होते रहे।

मिर्जापुर वैसे भी अपने मौज-मस्ती के लिए मशहूर रहा है। लगोटा, भग, बिवटान, गगास्नान, पूजन, कथा-श्रवण, पर्यटन तथा पिकनिक में लिट्टी-बाटी कजरी यहा का सास्कृतिक जीवन है।

कंतित शरीफ का उर्स मेला .

साम्प्रदायिक सद्भाव, हिन्दू-मुसलिम एकता का प्रतीक विन्ध्याचल के समीप ओझला से पश्चिम कतित मे ख्वाजा इस्माइल चिस्ती की मजार पर आठ नवम्बर को प्रतिवर्ष उर्स मेले का आयोजन किया जाता है। यह बहुत पुराना मेला है। तीन दिन के इस मेले मे दो लाख से अधिक हिन्दू, मुसलमान नर-नारी, बालक-वृद्ध सभी हाजिरी दर्ज कराते है। यहा पाच बजे भोर मे ही मजार पर गुसुल कार्यक्रम प्रस्तुत किया जाता है। गुसुल मे गुलाब जल, केवडा, चदन आदि मजार पर चढाया जाता है। इसके बाद पहली चादर किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा चढाई जाती है जो किसी भी जाति का हो सकता है। 1997 मे मिर्जापुर नगर निवासी श्री जवाहर कसेरा (कसरही मोहाल) की ओर से चढायी गयी थी। उर्स के मौके पर मजार का दरवाजा पाच वक्त के नमाज की अवधि मे बन्द रखा जाता है, क्योकि



वहां बेशुमार भीड एकत्र हो जाती है। मजार की देखभाल मुजावर बाबू शाह एव इस्माइल शाह द्वारा की जाती है। मजार तौसी इन्तमामिया कमेटी बाहर की व्यवस्था देखती है।

यह स्थान गगा के तट पर एक ऊचे स्थान पर सुरम्य वातावरण मे स्थित है। कहा जाता है कि जो भी व्यक्ति श्रद्धा भक्ति से मजार पर जाकर शीश नवाता है, उसकी इच्छाए पूरी होती है। इस मेले मे बाबा की मजार पर पहली चादर किसी हिन्दू भक्त द्वारा ही चढायी जाती है। कहते है, यह मजार अजमेर शरीफ के ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के भाजे ख्वाजा इस्माइल चिश्ती की है जिसकी देखभाल मुजावर बाबा शाह एव इस्माइल शाह द्वारा किया जा रहा है। इस मेले मे इतनी भीड हो जाती है कि पुलिस प्रशासन के अलावा स्वयसेवी सगठनो के लोगो को भी जुटना पडता है।

घोड़े शहीद बाबा का उर्स

हजरत ख्वाजा अलाउलहक चिश्ती रहमत उल्लाह अलैह उर्फ घोडे शहीद बाबा का उर्स प्रत्येक वर्ष 25 नवम्बर को मिर्जापुर मे सिविल लाइन्स के पास धूमधाम से मनाया जाता है। इस मुबारक अवसर पर गागर चादर कुल और महफिले मिलाद शरीफ और कव्वाली का भी आयोजन किया जाता है, जिसमे दूर-दराज के कव्वाल सहभाग करते है। जनाब अब्दुल का बाशाह खादिम दरगाह मुबारक ने बताया कि इस उर्स मे हजारो हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई भाग लेते है। लोग यहा मनौतिया मानकर आते है और उनकी मनोकामनाए पूरी होती है।

चुनार का प्रसिद्ध उर्स

कतित का उर्स और दरगाह शरीफ का मेला हिन्दुस्तान भर मे प्रसिद्ध है। यहा देश भर के लोग अपनी मनोकामना-पूर्ति तथा भक्ति-भाव से आते है। दरगाह शरीफ का मेला चैत्र मास मे हर गुरुवार को पाच बार लगता है। यह उर्स ईद के चाद पर तथा एक माह बाद बडे हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। रजब के महीने मे तीन दिन लगातार सादा कुरान का पाठ होता है। धार्मिक उसूल पर दार्शनिक बाते विशिष्ट विद्वानों मौलवियो द्वारा की जाती है। इस समारोह में मजहबी कट्टरता पर बल न देकर कुरान के दार्शनिक पदो पर चर्चाए होती है। जुमरात, नवचदी जुमरात के दिन हजारो भक्त यहा एकत्र होते हैं, दर्शन-पूजन होता है। चादरे चढाई जाती हैं, प्रसाद वितरित होता है।

यह उर्स बाबा शाह कासिम सुलेमानी के नाम से जाना जाता है और मजार आला से सम्बोधित



किया जाता है। इनके लडके और पोतो का नाम शाहवासिल शाह मुहम्मद वासिल तथा अब्दुल करीम था। वे भी सत थे। दरगाह शरीफ की इमारत चार सौ वर्ष पूर्व की है, भव्य और कलात्मक है। पूरी इमारत पत्थर की है। उस पर जो नक्काशी की गयी है, वह अद्‌भुत है। चुनार का गुलाबी रग का पत्थर वैसे भी दुनिया भर मे मशहूर है। यहा का पुरातत्व, धरोहरो तथा स्थापत्यो का कोई मुकाबला नही है। उसी पत्थर से यह इमारत बनी है जो पचासो वर्षो मे तैयार हुई होगी तथा अथाह धन लगाया गया होगा। यह धन राजघरानो से तथा भक्तो की ओर से आया होगा। बाबा कासिम के बारे मे बताया जाता है कि जहागीर ने गगा के रास्ते लाहौर से नजरबद करके उन्हे यहा भेजा था। यहा डाक बगले मे उन्हे कैद किया गया था। बताया जाता है कि उनके हाथ में हथकडी और पावो मे जजीर बधी थी, किंतु जब उनके नमाज अदा करने का समय होता तो वह अपने आप खुल जाती, दरवाजा भी खुल जाता एक बार उन्होने एक तीर किले के डाक बगले के ऊपर से दक्षिण की ओर छोडा जो आगे जाकर दरगाह के पास गिरने लगा तो उन्होने कहा टूक और अर्थात् थोडा और आगे जाकर गिरो, तो वह आगे जाकर मजार पर गिरा, जिसका नाम आज भी टेकउर पडा है। इसी 'टेकउर' मे मेला लगता है। इस मजार की इमारत मे एक पगडी रखी हुई है जिसके बारे मे चार सौ वर्ष पूर्व बगदाद के एक पीर ने कहा था कि यह पगडी शेख अब्दुल कादिर जिलानी की है।

अन्य उर्स :

चुनार मे और भी कई जगहो पर उर्स लगता है जैसे (1) किले के गेट पर अलग शरीफ का उर्स (2) किले की चढाई पर दीवार के पास मामा-भैने का उर्स (3) गजनवी शरीफ का उर्स (4) मुहम्मद शाह की मजार का उर्स (5) लालू शरीफ (7) घोडा शरीफ (8) गदाशाह (9) उष्माशाह आदि। नगर-निवासी अब्दुल रशीद से हुई वार्ता के अनुसार राजर्षि भर्तृहरि के समय से ही यहा सत-महात्मा आते रहे। महबूब वियावली इमिलिया चट्टी के पास पटिहरा-गांव मे रहते थे, वे भी सत थे, वहा भी उर्स लगता है। दरगाह शाह बाबा कासिम के एक लडके पीर बाबा कबीर अब भी जीवित है। तात्पर्य यह कि उनके लडके सत थे। वह परपरा आज भी चली आ रही है।



वाराणसी

वाराणसी पूर्वाचल की सबसे बडी सास्कृतिक नगरी है। कहते है यह शिवजी के त्रिशूल पर बसी है तथा अक्षय है। यह महातीर्थ है। यहा मरने पर मुक्ति मिलती है- "काश्या मरणा मुक्ति"। गगा-तट पर स्थित अब यह महानगरी है। विद्या का केन्द्र है। अत यहा अगणित तीर्थ मदिर तथा पवित्र स्थल है। यहा समय-समय पर तीर्थयात्रियो की भारी भीड एकत्र हो जाती है, अत वैसे ही मेला का दृश्य उपस्थित होता रहता है। तब भी कुछ विशेष मेले यहा लगते है जिनका उल्लेख अपेक्षित है-

जागेश्वर नाथ का मेला :

काशी जनपद मे हेतमपुर नाम का एक गाव है जहा महाशिवरात्रि पर एक सप्ताह का बडा मेला लगता है। कहते है धरती के गर्भ से यहा एक शिवलिग अपने आप निकला था। एक बार एक चरवाहे ने पलाश का फूल समझकर उस शिवलिग पर कुल्हाडी चला दी। शिवलिंग मिट्टी से लिपटा था। कुल्हाडी लगते ही उससे रक्त की धारा फूट पडी। वह चरवाहा वहा से भाग खडा हुआ। गाव मे आकर उसने इस घटना का जिक्र किया तब वहा लोग पहुचे। मेला सा लग गया। यह बात काशी-नरेश को मालूम हुई तो वे भी पहुच गये। वे भी हैरान रह गये। उन्होने वही शिवजी का मदिर बनवा दिया। पूजा होने लगी। तभी से आज तक मेला लगता है। कई हजार की भीड एकत्र हो जाती है।

कीनाराम का मेला :

वाराणसी जनपद की चन्दोली तहसील मे रामगढ नामक स्थान पर बाबा कीनाराम का ललही छठ पर मेला लगता है। कीनाराम बडे सत थे। उनकी शिष्य-परपरा है। उनके शिष्य यहां इस अवसर पर उपस्थित होते है जिसके कारण मेले का दृश्य उपस्थित हो जाता है।

पंचक्रोशी मेला (यात्रा) :

काशी की पचक्रोशी तथा विन्ध्याचल की त्रिकोण-यात्रा का धार्मिक महत्व है। ये यात्राए वैसे तो किसी भी समय की जा सकती हैं, किंतु पचक्रोशी यात्रा आश्विन, कार्तिक अगहन, माघ, फाल्गुन, चैत्र और बैशाख मे की जाती है। हर तीन वर्ष पर अधिक मास मे इसकी यात्रा का विशेष महत्व हो जाता है। इस अवसर पर इतनी भीड हो जाती है कि पूरा नगर मेले का रूप धारण कर लेता



है। इस यात्रा मे पति-पत्नी साथ-साथ सम्मिलित होते हे। पाच दिन तक प्रतिदिन पाच-पाच कोस पैदल चला जाता था। कुछ लोग तो बिना जूता-चप्पल के ही चलते है, व्रत रहते है। कीर्तन-भजन करते रहते है। पाच दिन के पाच पडाव निर्धारित है- (1) कर्दमेश्वर, (2) भीम चौरा (3) रामेश्वर (4) शिवपुर स्थित पच पाण्डव (5) कपिल धारा । इन पाचो प्रमुख यात्राओ के अतर्गत काशी का पूरा वृत्त आ जाता है और सभी तीर्थ तथा मदिरो की यात्रा हो जाती है। इसमे शताधिक मदिर और तीर्थ आ जाते है।

यह यात्रा नगर स्थित ज्ञानवापी से प्रारभ होती है जिसके अतर्गत मणिकर्णिका घाट पर गगा-स्नान प्रमुख है। फिर यात्रा का ज्ञानवापी मे सकल्प किया जाता है। यात्री सकल्प के उपरात क्रमश कर्दमेश्वर, भीम चण्डी, रामेश्वर और कपिलधारा की यात्रा पूरी करके पुन ज्ञानवापी आ जाते है तथा यात्रा की पूर्णाहुति भी यही होती है। यात्रा पूरी होने पर तीर्थ यात्री दान, ब्राह्मण भोजन करते-कराते है।

इसका नाम तो पचक्रोशी है, कितु एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी क्रमश तीन, आठ, पन्द्रह, उन्नीस और बाईस कोस पड जाती है। इतनी दूरी तय करने के बाद भी लोग थकान का अनुभव नही करते। वृद्धजन भी इस यात्रा को पूरा कर लेते है। ऐसा विश्वास है कि काशी तीनो लोको से न्यारी है तथा शिव के त्रिशूल पर बसी है। अत यहा दैहिक, दैविक, भौतिक ताप का प्रभाव नही पडता। बहुत से लोग हर कष्ट सहन कर के भी काशीवास करना चाहते है। रूद्र काशिकेय ने लिखा है-

"चना चबैना गग जल, जो पुरवे करतार।
काशी कबहुं न छोडिए, विश्वनाथ दरबार।।"

तथा -

"मरण मगलं पत्र विभूतिश्च विभूषणम्।
कौपीन यत्र कौषेयं, सा काशी केन मीयते।।"

अर्थात् जहां मर जाना भी मंगलमय हो, विभूति ही आभूषण हो, कौपीन ही रेशमी वस्त्र हो, वह काशी किसके लिए मोक्षदायी नही है, अर्थात् सबके लिए है।

पचक्रोशी यात्रा के समय स्थान-स्थान पर प्रत्येक पडाव पर दुकाने रात-दिन सजी रहती है। खाने-पीने की वस्तुए उपलब्ध रहती है। रात मे प्रवचन, कथावार्ता का आयोजन किया जाता है। हर जगह हजारों लोगो के लिए आवासीय व्यवस्था रहती है। धर्मशाले, मदिर खचाखच भरे रहते है।



भोजन बनाकर खाने की भी व्यवस्था रहती है। मार्ग-दर्शक रहते हैं। भूले-बिसरे लोगो के लिए शिविर लगा रहता है। पानी और मलमूत्र त्याग की व्यवस्था नगर निगम तथा प्रशासन द्वारा की जाती है। सुरक्षा का प्रबध भी शासन करता है तब भी यदा-कदा अशोभनीय घटनाए घट जाती है।

भगवान अवधूत का मेला :

काशी मे पुल के पूर्व गगा जी के तट पर पडाव नामक स्थान है। यहा भगवान राम अवधूत का उनके जन्मदिन पर बडा मेला लगता है। वहा बडा आश्रम है जिसमे सत, महात्मा, कुष्ठरोगी आते-जाते रहते है। विश्वास है कि यहा रहने से कुष्ठ रोग ठीक हो जाता है। भगवान अवधूत राम महान् सत तथा औघड थे। उनकी एक लम्बी शिष्य-परपरा है जिसमे बडे-बडे लोग है। भूतपूर्व प्रधानमत्री चन्द्रशेखर भी यहां आते रहते है।

श्रावणी सोमवार :

कार्तिक और श्रावण दोनो माह भारतीय जनता के हर्षोल्लास, व्रतोपवास, आनन्द, आह्लाद तथा धार्मिक भावना के प्रतीक है। ऐसा माना जाता है कि श्रावण मास मे आकाश-पाताल का मिलन होता है। धरती हरी-भरी होकर गदरा जाती है तो आकाश बादलो के कारण गरुहा जाता है। वह धरती का आलिगन करना चाहता है। इसी खुशी मे मानव-मन भी उद्वेलित हो उठता है। कवि-मन से कविता फूट पडती है। मयूर-मन भी वन मे नाच उठता है। जाहिर है कि प्रकृति और पुरुष दोनो के मिलन का पर्व है सावन। यह भी माना जाता है कि फाल्गुन मे पुरुष वर्ग मे कामोत्तेजना उत्पन्न होती है तो सावन मे नारी वर्ग मे। इसीलिए कजरी के गीत सावन मास मे स्त्रिया गाती है, मेहंदी रचाती है, एडी रगाती है, मीसी लगाती है, झूला झूलती और उसके गीत गाती है। वे पति-समागम की साध रखती है। वे सावन के चारो सोमवार का व्रत पुत्रकामना से करती है। वह पुत्र भी ऐसा जो सोम-गुण-धर्म वाला हो।

सोम शिव का दिन है, शिवोपासना का दिन है। सोम जल, शीतलता, स्निग्धता, सात्विकता, शाति और सादगी का प्रतीक भी है। अग्नि रूद्रता का प्रतीक है। ग्रीष्म की तपन में अग्नि प्रज्ज्वलनशील होता है जिसे शात करने के लिए सोम (जल) की आवश्यकता होती है। जनार्दन उपाध्याय लिखते है कि- "मानव शरीर एक पवित्र देव मदिर है। ठीक उसी प्रकार देवालय में शिवलिग और उसके



ऊपर लटकता जल घट है जिसके क्रमश बूद-बूद बन सोम या जल रस शिव (अग्नि) पर टपकता है जो रूद्र को शिव बनाने मे समर्थ है। रूद्र मे सौम्यता सोम के आदान से आती है। अत श्रावण मास मे शिवोपासना मगल मूलक है।"[1]

भोजपुरी भाषी जनपदो सहित पूर्वाचल के प्रत्येक अचल मे प्रत्येक सोमवार का श्रावणी मेला लगता है। काशी मे उत्सव होते है, मदिरो को सजाया जाता है तो मिर्जापुर चुनार मे दुर्गा जी नामक स्थान पर लिट्टी/भटा का मेला लगता है। बाटी-दाल-खीर खायी जाती है। गोते लगाये जाते है। पतग उडायी जाती है। दगल आयोजित किये जाते है। ढोलक की थाप पर आल्हा-ऊदल के गीत गाये जाते है। श्री जनार्दन उपाध्याय आगे कहते है कि -- "श्रावण के सोमवार का अपेक्षाकृत अधिक महत्व है। इस कारण इस मास को आकाश के सोम के लिए विशेष महत्वपूर्ण माना गया है। (2) सोमवार के दिन के सोम तत्व या जल का सोम चक्की से सबध है-- इसलिए इसका विशेष महत्व है।"[2]

इसी कारण श्रावण मास मे गगा-स्नान का बडा महत्व है। ऐसा करने से चित्त शात ओर स्वास्थ्य ठीक रहता है। इस मास मे रूद्राभिषेक और पराभिषेक का भी बडा महत्व है। इस मास मे प्रत्येक सोमवार को व्रत रहना चाहिए, इससे मन ओर आत्मा की शुद्धि होती है। बुद्धि का विकास होता है।

काशी : सोरहिया मेला · लक्ष्मीकुण्ड का :

काशी कला और सस्कृति की प्राचीन नगरी है। यहा समय-समय पर, ठाव-ठाव पर मेलो-ठेलो का आयोजन किया जाता है जिनमें से एक है लक्ष्मीकुण्ड का सोरहिया मेला। सोलह दिनो का यह मेला भाद्रपद शुक्लाष्टी से प्रारभ होकर आश्विन कृष्णाष्टमी तक चलता है। यह मुख्य रूप से स्त्रियो का मेला है और वे सोलहो दिन व्रत रहकर लक्ष्मी जी का विशेष रक्षासूत्र धारण करती हैं। इसी मेले से त्यौहारो, व्रतों और मेलो की परपरा शुरू होती है। इस मेले में घरेलू उपयोग की प्राय हाथ से बनी कलात्मक वस्तुए बिकने को आती है जिनमे लक्ष्मी जी की मूर्तियां मुख्य है। इसके अलावा लाल मिट्टी के पात्र, बच्चो के खिलौने बिकने के लिए आते है। स्त्रिया प्राय सोलहो दिन लक्ष्मीकुण्ड मे स्नान करती है।

1 *श्रावण का सोमवार और शिवोपासना जनार्दन उपाध्याय, आज साय समाचार, (सा वि), 22 जुलाई, 1973 पृ 4*

2 *वही पृ. 4*



यह मेला नगर के मध्य मे लगता है, अत क्रमश स्थानाभाव होता जा रहा है। पहले नाटक नौटकी, खेल चर्खी के द्वारा मनोरजन किया जाता था, किंतु अब स्थानाभाव के चलते श्रृगार प्रसाधन तथा मिट्टी की बनी लक्ष्मीजी की मुण्डा मूर्तियो की दुकाने सजती है। यहा दो-दो मदिर लक्ष्मी जी के है। इन मदिरो को बिजली-बत्ती से सजाया जाता है और हवन-पूजन-प्रवचन कथा-वार्ता का क्रम सोलहो दिन चलता है। स्त्रिया आश्विन कृष्ण सप्तमी को रात्रि से अष्टमी तक जीवत्पुत्रिका (जिउतिया) व्रत रहती है।[1] हस्तकला और शिल्प की दृष्टि से इस मेले का बडा महत्व है। यह मेला न जाने कब से लगता आ रहा है। यहा शिल्पकार आकर स्वय मूर्तिया तथा अन्य कलात्मक वस्तुए बनाते भी हे। पहले यह मेला इतना आकर्षक होता था कि लगता था जैसे एक कला नगरी ही बस गयी है, किन्तु प्लास्टिक सस्कृति के चलते अब यहा प्लास्टिक कि खिलौने अधिक बिकने लगे है और काष्ठ, मिट्टी के खिलौनो की कला समाप्त होती जा रही है।[2] अब कला-पारखी भी कहा रह गये है जो गुणज्ञ गुणियो की कदर करे, वर्ना पहले समृद्ध-सम्पन्न परिवारो की स्त्रिया इराने जाती थी और वस्तुओ की मुहमागी कीमत देकर वस्तुए खरीदती थी।

इस मेले मे दूर-दराज के कलाकार अथवा दुकानदार पहुचते थे। आजमगढ मिट्टी की कला के लिए मशहूर है, चुनार की चीनी मिट्टी की कला, अहरौरा की लाल मिट्टी की कला प्रसिद्ध है। इन स्थानो के शिल्पी तथा शिल्प व्यापारी भी इस मेले मे पहुंचते थे।

मेलो-ठेलो का धार्मिक, सास्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक महत्व भी है जो अप-सस्कृति के चलते महत्वहीन होता जा रहा हे। पहले मेलों-ठेलो से न जाने कितने परिवारो की परवरिश भी होती थी। मेलो का स्थान अब उत्सव ले रहे हे।

रथयात्रा :

वैसे तो रथयात्रा द्वारिकापुरी की ही मशहूर है और उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व है, किन्तु देखा-देखी अन्य अनेक बडे शहरो तथा स्थानो पर भी रथयात्रा महोत्सव का आयोजन किया जाता है। भोजपुरी भाषी जनपदो मे काशी की रथयात्रा का भी एतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व हो गया है। यहा एक मुहल्ले का नामकरण ही रथयात्रा पड गया है। लक्सा, गुरुबाग, कमाच्छा से लेकर महमूरगंज

1. जिउतिया के बारे मे त्यौहारो के प्रकरण देखे।
2 काशी का सोरहिया मेला राम मोहन पाठक आज साय समाचार (सा. वि), 6 अक्टूबर, 1974 पृ 32



तक यहा इस अवसर पर बडा मेला लगता है। पूरा नगर तथा आस-पास की जनता दर्शनार्थ तथा क्रय-विक्रय के लिए उमड पडती है। इस मेले मे सडक के दोनो ओर विविध प्रकार की दुकाने सजती-सजायी जाती है। साय चार बजे से ही भीड बढने लगती है जो दस बजे रात तक जमी रहती है। यहा काष्ठरथ सजाया जाता है जिस पर श्री जगन्नाथ जी, सुभद्रा जी और बलराम जी की भव्य मूर्तिया होती है। इसे श्रद्धालु भक्तगण खीचते है। ऐसा माना जाता है कि रथ खीचने से भगवान प्रसन्न होते है और मनोकामना पूरी होती है।

रथयात्रा क्यो होती है ? इस सबध मे एक धार्मिक तथा पौराणिक कथा प्रचलित है। द्वारिका मे एक बार श्री सुभद्राजी ने नगर देखने की इच्छा प्रकट की। तब श्रीकृष्ण जी, बलराम जी उन्हे पृथक रथ मे बिठा कर अपने रथो के मध्य मे उनका रथ करके उन्हे नगर-दर्शन कराने ले गये थे। इसी घटना को स्मरण करने तथा उन पर अपनी श्रद्धा-भक्ति का प्रदर्शन करने के लिए रथयात्रा की परपरा चल पडी।

इसे द्वारिका तथा जगन्नाथपुरी मे सबसे अधिक महत्व मिला। यह रथयात्रा आषाढ शुक्ल पक्ष की द्वितीया को होती है। यह पुरी का प्रधान महोत्सव है जिसमे देश-विदेश के लोग उपस्थित होते है और जब रथ खीचा जाने लगता है तो लाखो लोग उसमें हाथ लगा देते है। रथ या रथ मे लगी रस्सी का स्पर्श भी हो गया तो लोग अपने को धन्य समझते है। सभी प्रसाद ग्रहण करते है। लड्डू, हलवा, पूडी, फल का प्रसाद चढाया जाता है। वाराणसी मे तिल के लड्डू, नान खटाई फल तथा अन्य खाद्यान्नो की दुकाने सजती है।

रथयात्रा से सबन्धित कुछ कथाए कही-सुनी जाती है जिनमें से एक इस प्रकार है-

प्राचीन काल मे मालवनरेश इन्द्रद्युम्न नीलाचल पर श्रीनीलमाधव के श्रीविग्रह के दर्शनार्थ चल पडे। किन्तु उनके वहा पहुचने के पूर्व ही देवगण उस श्रीविग्रह को लेकर अपने लोक मे चले गये। उसी समय आकाशवाणी हुई कि दारुब्रह्म रूप मे तुम्हे अब श्री जगन्नाथ जी के दर्शन होगे।

राजा इन्द्रद्युम्न सपरिवार नीलाचल के पास रहने लगे। एक दिन समुद्र मे एक बहुत बडा काष्ठ (महादारू) बहकर आया। राजा ने उसे निकलवाकर उससे विष्णु-मूर्ति बनवाने का निश्चय किया। उसी समय वृद्ध बढई के रूप मे विश्वकर्मा आये। उन्होने कहा- "मै मूर्ति बना सकता हू, परन्तु मै जब तक सूचित न करू, मेरा वह कक्ष खोला न जाय जिसमे मै वह मूर्ति बनाऊगा।" राजा ने इसे



स्वीकार कर लिया।

गुण्डीचा मदिर के स्थान पर भवन मे वृद्ध बढई महादारू को लेकर मूर्ति बनाने लगे। कई दिन बीत गये। महारानी को शका हुई कि इतने दिनो मे वह बिचारा बिना अन्न-जल ग्रहण किये कही मर न गया हो, महाराज ने उसकी अवस्था देखने के लिए द्वार खुलवाया।

बढई तो अदृश्य हो गया था, परन्तु वहा श्री जगन्नाथ जी, सुभद्रा जी तथा बलराम जी की अपूर्ण प्रतिमाए मिली। राजा को बडा दु ख हुआ, परन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई- "चिता मत करो, इसी रूप मे हमारी रहने की इच्छा है। मूर्ति पर पवित्र दृश्य रग आदि चढाकर उसे प्रतिष्ठित करा दो। तदनुसार वे दो मूर्तिया प्रतिष्ठित हुईं। गुण्डीचा मदिर को ब्रह्मलोक या जनकपुर कहते हैं।[1]

इसी प्रकार अन्य कथाए भी है। एक अन्य कथा श्रीकृष्ण के अपनी प्राणेश्वरी महाभावरूपिणी श्री राधा किशोरी के महाभाव मे पूर्णत लीन होने के कारण काष्ठवत हो जाने की स्थिति से सबन्धित है। यह यात्रा मूर्ति चतुष्टाय श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा, सुदर्शन, श्री नीलाचल क्षेत्र को विभूषित करते हुए आज तक विराजमान है।

लोलार्क छठ का मेला :

वाराणसी महानगर के भदैनी मुहल्ले मे गगा तट पर लोलार्क कुण्ड है। इसी के समीप शिवाला मे हयग्रीव मदिर, मदिर से पश्चिम हिगुआ तालाब है। यही भगवान जगन्नाथ का भी मदिर है। भाद्रपद शुक्ल छठ को यहा मेला लगता है और दर्शनार्थी तालाब, कुण्ड मे स्नान करके मदिरो मे दर्शन करते तथा प्रसाद चढाते है। स्त्रियो मे विश्वास है कि ऐसा करने से सुयोग्य संतान पैदा होती है। यहा कजली के दगल हुआ करते थे। नान खटाई की यहा खूब बिक्री होती है जो एक प्रकार की मिठाई है। नगर का यह बड़ा प्रसिद्ध मेला है। यही प. शातिप्रिय द्विवेदी, डा नामवर सिह, डा. काशीनाथ सिह साहित्यकारो का आवास है।

लतीफशाह का मेला :

वाराणसी जनपद मे चकिया नामक स्थान पर वाराणसी से लगभग 60 किमी. पूरब दक्षिण कर्मनाशा नदी के समीप लतीफशाह की मजार है। वहा भाद्रपद शुक्ल पचमी को उर्स लगता है।

1 रथयात्रा गौरी शकर श्रीवास्तव आज सायं समाचार (सा. वि.), 23 जून, 1974, पृ 19



इस मेले मे तीस हजार तक हिन्दू-मुसलमान-सिख सभी आते ह। यही भगवान श्रीकृष्ण की बरही का मेला भी लगता है। दिन मे मजार पर उर्स लगता है तो सायकाल इस मदिर मे श्रीकृष्ण की मूर्ति की रथयात्रा निकलती है। उनकी बरही मनायी जाती है। यह विचित्र सयोग है। यहा बिरहा, कजरी के बडे-बडे दगल आयोजित हो चुके है। यहा इस अवसर पर पचास हजार तक भीड एकत्र हो जाती है। यातायात, सन्देशवाहन आवास की सुविधाए उपलब्ध है।



सिद्धार्थनगर

सिद्धार्थनगर नया जनपद है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यहा बौद्ध धर्म का प्रभाव अधिक है। यहा दो प्रमुख मेले लगते है, वैसे तो धार्मिक अवसरो पर मेलो-ठेलो का आयोजन होता ही रहता है-

भरतभारी का मेला :

सिद्धार्थनगर जिले मे डुमरियागंज एक कस्बा है। इस कस्बे से लगभग 7 किमी. दूर भरतभारी नामक स्थान पर मेला लगता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, लोगो का विश्वास है कि यहा दशरथ पुत्र भरत का आगमन हुआ था और उन्होंने यहा के तालाब मे स्नान किया था। मेला इसी तालाब के चारो ओर लगता है। मेला कार्तिक पूर्णिमा से प्रारंभ होकर 15 दिनो तक चलता है। प्रत्येक दिन श्रद्धालु इस तालाब मे स्नान करते और मदिर मे भगवान को प्रसाद चढाते है।

तालाब का जल कभी सूखता नही, निर्मल, निरोग, आयुष्यवर्द्धक होता है। यहा आवागमन के साधन सुलभ है। धर्मशाला मदिर, होटल, आवासीय सुविधाए उपलब्ध है। यहा 15 दिनो मे कई लाख दर्शनार्थी आ जाते है। रामायण पाठ प्रवचन, भजन, कीर्तन का आयोजन पूरे दिन चलता है। इलायचीदाना, पेडा, खोये की बनी अन्य मिठाइया यहां का उपहार प्रसाद है।

बासी का मेला :

बासी का मेला अपना पौराणिक महत्व रखता है। यह माघी अमावस्या के दिन से प्रारभ होकर लगभग एक माह तक चलता है। इस बीच लाखो भक्त, मेला प्रेमी यहा आते रहते है। इस मेले मे काष्ठशिल्प, टेराकोटा, जरी के सामान, प्रस्तर के बने सामान, खिलौने, पशु-पक्षी बिकने के लिए आते है। विविध प्रकार की मिठाइया बिकती हैं। मनोरजन के लिए लोकगीत, नाटक, जादू, चरखी, कवि-सम्मेलन, प्रवचन, भजन-कीर्तन के आयोजन होते रहते है। इस मेले से राष्ट्रीय तथा नगर की आय बढ जाती है।

राप्ती नदी के तट पर स्थित होने के कारण इसका सास्कृतिक महत्त्व बढ जाता है। श्रद्धालु नदी मे स्नान करके दान देते है। यहा मदिर बने है। यातायात की सुविधाए उपलब्ध है। आवास की भी विशेष असुविधा नही है। हिन्दू महिलाए प्राय. एक माह तक नित्य स्नान करके पूजन करती है।



सोनभद्र जनपद के मेले-ठेले, साप्ताहिक बाजारें और फड़

उद्योग-व्यापार के मुख्य स्त्रोत वन है और यातायात का माध्यम नदिया आरभ से ही रही है। जनपद सोनभद्र आरभ से ही वनो और पहाडो से आच्छादित रहा है। सोन, रेणु, बिजल, कनहर यहा की मुख्य नदिया है जिनसे नावो और बहरो द्वारा वन्य उपजे ले जायी जाती रही है। प्राय सभी नदियो का जलागम सोन मे होता था और सोन से पटना के पास गगा मे य वस्तुए पहुचा दी जाती थी, फिर वहा से उन्हे कलकत्ता समुद्र मे ले जाया जाता था। कलकत्ता से अग्रेज इग्लैड ले जाया करते थे।

इतनी बडी बाजार के लिए जनपद मे वस्तुए क्रय करने के उद्देश्य से स्थान-स्थान पर बाजारो, मेलो-ठेलो और फडो के स्थान बनाये गये थे जो अद्यावधि व्यापार के केन्द्र बने हुए है। इन स्थानो मे कोयला, बास, महुआ, लाह, रेशम, कत्था, गोलोचन, आवला हर्रा बहेडा, चिरौजी, जानवरो के चमडे, सीग, सूती कपडे, ऊन या ऊनी कम्बल, जानवर, शहद, रस्सी, तात, मोरपख, जडी-बूटिया, बीडी पत्ता, दातून आदि वस्तुए बिकने को आती थी और कमोवेश आज भी आती है। अत इन स्थानो के बारे मे हम सक्षिप्त विवरण दे देना उचित समझते है।

ओबरा :

ओबरा राबर्ट्सगज मुख्यालय से 35 किमी दक्षिण स्थित है जहा अब तापीय विद्युत गृह बन गया है। अब यहा की आबादी सवा लाख से ऊपर है, किंतु पहले यहा वन था तथा बर्दिया-खैरटिया, ओबरा, बिल्ली-बाडी में साप्ताहिक बाजारे लगा करती थी। इस बाजार मे प्राय सभी वन्य उपजे बिकने को आती थी। बिहार और मध्यप्रदेश तक के व्यापारी क्रय-विक्रय के लिए आया करते थे। यहा से रेल के माध्यम से भारी वस्तुए सोन की धारा का सहारा पाकर पटना, कलकत्ता, फिर विदेशो तक चली जाती थी। हल्की वस्तुए बैलो द्वारा घाट पार करके घोरावल होती हुई मिर्जापुर चुनार चली जाती थी। तब पत्थर कोयले की कीमत कोई नही जानता था, किंतु अंग्रेज इस अपने देश ले जाते थे, जबकि आज वही कोयला एक बडे कारखाने का रूप ले लिया है और बीना तथा उसके आसपास की खदानो के कोयले से देश-प्रदेश और जनपद के कल-कारखाने चल रहे है। चिरौजी और कत्था, दालें और गोलोचन आदि वस्तुए आज भी हर रविवार को यहा बिकने के लिए आती



है जिनका सौदा करने काशी-प्रयाग कानपुर, मिर्जापुर के व्यापारी यहा आते रहते है।

इन बाजारो से विशेष रूप से आदिवासियो का शोषण होता है। वे उसकी कीमत नही जानते और व्यापारी उन्हे ठग कर थोडा-बहुत पैसा देकर उनसे सामान ले लेते है। कुछ तो बधुआ बन गये है कि सप्ताह भर के लिए सौदा दुकानदार से वे ले लेते हैं और उसके बदले कीमती वस्तुए उन्ह दे जाते हे। उदाहरण के लिए चिरौजी को लिया जा सकता है। जिस चिरौजी का भाव बनारस मे तीन सौ रुपये किलो है, उसे यहा का व्यापारी मात्र एक सौ अथवा पचास ही रुपये मे खरीद लेता है। गोलोचन का कोई भाव नही। वे उसे नकली करार देकर कम दाम मे खरीद लेते है। यही हाल घी और चिरौजी का भी है। इनमे व्यापारी दूना, तीनगुना, चार गुना तक लाभ उठाते है।

कुडारी .

कुडारी सोनतट पर स्थित सोनभद्र की सबसे पुरानी धार्मिक और पुरातात्विक महत्व की जगह है। यहा देवीधाम तथा तीर्थ है जहा नवरात्र के अवसर पर एक-माह का मेला लगता है तथा प्रत्येक रविवार को बाजार लगती है। यह स्थान ओबरा-चोपन से लगभग बीस किमी. पूरब-दक्षिण की ओर सीधी जनपद की सीमा पर स्थित है। यह भी आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र है और यहा वन्य उपजें बिकने को आती है। पहले इस बाजार मे मृगछाला, हिरण, बारहसिगा की सीग भी बिकने को आती थी, किन्तु अब दैनिक उपयोग की वस्तुओ का यहा से बडा व्यापार होता है। अगरिया जनजाति के लोग कच्चे-पक्के लोहे के सामान जेसे सभी प्रकार के बर्तन, कुल्हाडी, फावडा, तीर-कमान आदि लाकर अब भी बेचते है। वाद्ययत्र बिकते है और बन्दूकं भी बिकती थीं। कुडारी इस क्षेत्र का सबसे बडा मेला है।

गोठानी :

गोठानी चोपन से 10 किमी0 पश्चिम रेल, बिजुल और सोन के त्रिवेणी सगम पर स्थित मध्यकालीन सस्कृति का महत्वपूर्ण स्थल है। गो-स्थानी से गोठानी बना होगा जिससे स्पष्ट है कि यह स्थान गोचारण-गोपालन के लिए प्रसिद्ध रहा होगा। यहा मध्यकाल तथा सोलहवी-सत्रहवीं शताब्दी के लगभग एक दर्जन सुन्दर और ऊचे शिवालय है जिनमें शिव, दुर्गा, हनुमान, गणेश तथा अन्य देवी-देवताओ की मूर्तिया स्थापित है। यही लोरिक और मोलागत का युद्ध हुआ था। अगोरी और गोठानी को मिलाकर



अनेक धरोहर तथा पुरावशेष वर्तमान है। इसे गुप्तकाशी अथवा द्वितीयकाशी के नाम से जाना जाता है।

यहा शिवरात्रि पर बसत पचमी से लगभग 15 दिनो का मेला लगता है। यहा वनवासी-आदिवासी धार्मिक भावना से तथा मनोरजन के लिए आते है। तेल की बनी चोटहिया जलेबी, बेर, ताबा, पीतल, लोहा के पात्र, दैनिक उपयोग की वस्तुए इस मेले के मुख्य आकर्षण है।

गौरीशकर :

गौरीशकर राबर्ट्सगज जिला मुख्यालय से 6 किमी. पश्चिम मे एक नाले के तट पर स्थित है। यहा गौरीशकर की सम्पृक्त भव्य प्रतिमा मध्यकाल से ही प्रतिष्टापित होकर अद्यावधि विशेष रूप से गोस्वामी जाति के लोगो द्वारा पूजित है। कहते है ये लोग काशी से यहा आये थे और अनेक स्थानो पर उन्होने शिवलिगो की स्थापना की थी। कावरियो के लिए यह स्थान श्रद्धास्पद है।

यहा बसत से शिवरात्रि तक मेले का माहौल रहता है। किंतु शिवरात्रि के दिन बडा मेला लगता है। इस मेले मे धार्मिक पुस्तके, लकडी और पत्थर की बनी वस्तुए विशेष रूप से बिकने आती है। चर्खी, नौटकी, ड्रामा, बाइस्कोप इस मेले के मुख्य आकर्षण होते है। यहा एक बहुत पुराना विशाल वट वृक्ष है।

मूड़ीसेमर :

मूडी सेमर का नाम विढमगज भी है जिसे विढम साहब अग्रेज के नाम से जाना जाता है। मूडी सेमर इसका ऐतिहासिक नाम है जो आदिवासियो की वीरता का प्रतीक है। यह बिहार की सीमा पर पांडु नदी के तट पर स्थित है।

यहा प्रत्येक सोमवार को मवेशियो का, विशेष रूप से बकरियो, भेडो का मेला लगता है। यहा भारी सख्या मे भेडो, बकरियो और उनके चमडो, चमडे की बनी वस्तुओं-वाद्ययत्रो का क्रय-विक्रय होता है। भेडो के ऊन के बने कबल और पनिका जनजाति द्वारा बनाये गये हाथ के बने रेशमी-सूती कपडे भी बिकने के लिये आते थे। इसी प्रकार गोलोचन, चिरौजी दाले, आवला, हर्रा, बहेडा, वनफल, कदमूल, जडी-बूटियां भी बिकने के लिए आती है।



अन्य मेले :

इन प्रमुख मेलो के अतिरिक्त दुद्धी, कोन, रेणुकूट, डाला, बीजपुर, म्यौरपुर, शक्तिनगर, बीना अनपरा, रेणुसागर आदि प्राय सभी औद्योगिक प्रतिष्ठानो मे भी प्रत्येक रविवार को साप्ताहिक बाजारे लगती है जिनमे दैनिक उपयोग की वस्तुओ का क्रय-विक्रय होता है। यहा कुछ ऐसे व्यापारी भी आते है जो सदा घूमते-फिरते रहते है। चारो रविवार के उनके स्थान निश्चित है। जहा पहुचते ही है। इससे वनवासी आदिवासी सप्ताह भर के लिए वस्तुए खरीदकर रख लेते है। इसके साथ उधार का सौदा अधिक चलता है और इसी कारण वनवासियो का शोषण भी बहुत होता है। वे एक प्रकार से बधुआ ग्राहक होते है।

अब इधर शिवद्वार, नलराजा, पचमुखी, कण्डाकोट आदि स्थानो पर भी बसतपचमी, शिवरात्रि के अवसर पर मेले लगने लगे है। छिपाताली देवानीचुवा (विजयगढ) का मेला पुराना अवश्य है।

मऊ का मेला :

राबर्ट्सगज से लगभग 20 किमी. पूरब-दक्षिण धधरौल बाध से आगे विजयगढ किले के मार्ग पर मऊ ग्राम मे एक पुराना बडा मदिर है। यहा विशाल शिवलिग तथा अन्य मूर्तियां स्थापित है। दो शहस्त्र शिवलिग भी है। यहां शिवरात्रि बसत पंचमी पर मेला लगता है जिसमे आदिवासी भारी सख्या मे एकत्र होते है। यहां गुहाचित्र भी है। ऐतिहासिक महत्व के इस स्थान के बारे मे डा0 अर्जुनदास केसरी तथा डॉ राकेश तिवारी ने विस्तार से लिखा है।

विजयगढ़ का उर्स :

सोनभद्र जनपद का विजयगढ एक परगना है। यहा एक ऊची पहाडी के ऊपर विजयगढ का किला बना है। कहते है, यह किला पाचवी शताब्दी मे कोल राजाओ द्वारा बनवाया गया था। तब से आज तक यह किला रहस्य और रोमाच के साथ-साथ इतिहास, पुरातत्व और सस्कृति- त्रिकोणीय सस्कृति का केन्द्र भी बना हुआ है। अब "चन्द्रकाता" धारावाहिक भी इस पर आधारित होकर काफी लोकप्रिय हुआ है। "चन्द्रकाता" के लेखक देवकी नंदन खत्री ने इसे काफी रोमाचक बना दिया है। जो भी हो, यह स्थान अब महत्त्वपूर्ण हो गया है। यहा प्रागैतिहासिक कालीन गुहाचित्र भी मिले है। सोन की घाटी मे निर्मित यह किला प्राकृतिक दृष्टि से भी दर्शनीय है।



यहा अप्रैल माह मे शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के अवसर पर उर्स और रामनवमी का मेला लगभग साथ-साथ लगता है जो धार्मिक एकता, साम्प्रदायिक सद्भावना का जीता-जागता प्रमाण बन चुका है। यहा एक ओर रामकथा का आयोजन किया जाता है तो दूसरी ओर उर्स का आयोजन। हिदू-मुसलमान दोनों एक साथ उपस्थित होकर अपना मनोरंजन तो करते ही है, धार्मिक भावना की भी तुष्टि करते है। यहा एक ओर मीरानशाह बाबा की मजार है तो दूसरी ओर राम-लक्ष्मण, गणेश, हनुमान की मूर्तिया भी है। एक स्थान पर रामकथा होती है तो दूसरी ओर कव्वाली का भी वृहद आयोजन किया जाता है। बाबा की मजार पर चादरे चढायी जाती हैं तो हनुमान, गणेश की मूर्तियो पर मिठाइयां। यहा रात भर जागरण होता है। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी बडी सख्या मे एकत्र होते हैं, किन्तु अभी तक कोई अप्रिय घटना नही हुई। बीहड और पहाडी होने के कारण लोग ट्रको, जीपो, बसो, स्कूटरों से पहुचते है। सोनभद्र के अलावा, काशी, प्रयाग, मिर्जापुर, जौनपुर, आजमगढ आदि जनपदो के भक्तगण भी यहां श्रद्धाभक्ति से पहुचते है। मनौतिया करते है और उनकी मनोकामनाएं भी पूरी होती हैं।

मीरानशाह बाबा कौन थे, इस सबध में अनेक तर्क किये जाते है, किन्तु श्री देव कुमार मिश्र के अनुसार उनका असली नाम शेख जैनुल था जो राजा चेतसिंह के दरबारी सैनिक और संत थे। अंग्रेजो ने जब राजा चेतसिह पर धन लूटने के ख्याल से आक्रमण किया तो उसमे वे मारे गये और चेतसिंह रीवां की ओर किले की खिडकी के रास्ते निकल भागे। बाद मे सत शेख की कब्र बनायी गयी जिनके प्रति जनता की श्रद्धा भक्ति बढती गयी और आज मेला अथवा उर्स का रूप धारण कर लिया है।



अंत में

उत्तर प्रदेश के प्रमुख भोजपुरी भाषी जनपद है- आजमगढ, गाजीपुर, गोरखपुर, देवरिया, बलिया, बस्ती, भदोही, मऊ, मिर्जापुर, वाराणसी, महराजगज, सोनभद्र, सिद्धार्थनगर। ये सभी जनपद पूर्वी उत्तर प्रदेश मे गगा, सरयू, गोमती, सोन आदि नदियो तथा इनमे मिलने वाले अगणित नालो-झरनो के तटो पर स्थित है। आरभ से ही यह क्षेत्र वन, उपवन, पहाड तथा खोह-कन्दराओ से घिरा रहा है। काशी इसका प्रभाव-क्षेत्र रहा है। एक ओर यह कला-सस्कृति की नगरी रही है तो दूसरी ओर विद्या-धर्म की भी केन्द्र स्थली रही है। शिव के त्रिशूल पर स्थित होने के कारण यह निरापद भी रही है, इसी कारण यहा अगणित सत-महात्मा, योगी, तपस्वी, विद्वान भी आते यज्ञानुष्ठान करते-कराते और साधना करते रहे है। विन्ध्यक्षेत्र होने के कारण महात्मा अगस्त्य से लेकर अगणित साधु, सत, धर्मावलम्बी भी यहा आते-जाते रहे है। सनातन, धर्मावलम्बी, वेष्णव, बल्लभाचार्य-विट्ठलनाथ जैसे बल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी, नाथ-सम्प्रदाय के सत, तात्रिक, शिव और शक्ति के साधक शैव-शाक्त, वैदिक धर्मानुयायी, जनजातीय अधविश्वासी, सभी ने इस क्षेत्र को अपना कर्मक्षेत्र बनाया था। यही कारण है कि यहा न जाने कितने यज्ञ हुए, अश्वमेध यज्ञ तक हुए। जहा-जहा ये अनुष्ठान हुए वे तीर्थ बन गये और उन स्थलो पर उनकी स्मृतियो को चिरस्थायी बनाने के लिए मेले-ठेले लगने लगे। फलत अद्यावधि इनकी बहुत अधिक सख्या हो गयी है। तथापि विभिन्न, पर्वो, त्यौहारो, व्रतोत्सवो पर लगने वाले मेलो-ठेलो का ऐतिहासिक तथा सास्कृतिक अध्ययन इस लघुकाय कृति में किया गया है। ये मेले-ठेले कितने पुराने है, यह बताना कठिन है। क्योकि पर्वो, त्यौहारो, मेलों-ठेलों पर अभी तक बहुत कम शोध-कार्य हुए है। इनके बारे में प्रमाणिक जानकारियो का भी सर्वथा अभाव है।

ऐसे विषयों पर अध्ययन के दो स्रोत हुआ करते हैं- प्राप्त ग्रंथ तथा स्थानीय प्रबुद्धजनो के वक्तव्य। पर्वो, त्यौहारो पर तो सामग्री प्राय' हर जगह मिल जाती है। उसके शास्त्रीय ग्रंथ, वेद शास्त्र और पुराण है, किन्तु मेलो-ठेलो के बारे मे जानकारी के स्रोत प्रबुद्धजन ही है।

जो भी हो, यह कृति पाठको के लाभार्थ प्रस्तुत करते हुए अतीव हर्ष और आनन्द का अनुभव हो रहा है। यह अध्ययन सम्पूर्ण नहीं है और कोई भी अध्ययन न तो सम्पूर्ण होता है और न अंतिम। तथापि इसमें सभी मान्य त्यौहारो, पर्वो और मेलो का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसमे केवल



व्रतो को सम्मिलित नही किया गया है और न ही कथा-वार्ताओ को क्योकि वे अध्ययन के पृथक विषय है। वर्ष के 365 दिनो मे लगभग 265 दिन व्रतो, उपवासो, त्यौहारो के दिन है, इन सबका विवरण प्रस्तुत करना सम्भव भी नही है। हा, अध्ययन के दौरान यह अनुभव किया गया कि त्यौहार, पर्व, व्रत, उत्सव, कथावार्ता, उपवास सभी एक-दूसरे के पूरक है और भारतीय आत्मा उनमें निवास करती है। ये सभी हमारी श्रद्धा, विश्वास के प्रतीक है। इनसे हमारा स्वास्थ्य तो ठीक रहता ही है, हमारे मानसिक विकार भी दूर हो जाते है। मेल-मिलाप, भाई-चारा स्नेह, सौहार्द्र के लिए इनकी बड़ी उपयोगिता है।



परिशिष्ट

सहायक एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. अग्निपुराण - श्रीराम शर्मा
2. अमर कोश
3. अष्टाध्यायी - पाणिनि
4. कजरी सग्रह - शिवदास
5. कविता कौमुदी - राम नरेश त्रिपाठी
6. करमा - डॉ. अर्जुनदास केसरी
7. कुम्भ महापर्व - भास्करानद लोहनी
8. कजरी मिर्जापुर सरनाम - डॉ. अर्जुनदास केसरी
9 गरुण पुराण
10 चरक सूत्र
11. दुर्गा सप्तशती
12. नगर पालिका के 105 वर्ष - मिर्जापुर
13. नाथ सम्प्रदाय - हजारी प्रसाद द्विवेदी
14 निरुक्त - यास्क
15. बौद्ध धर्म दर्शन तथा साहित्य - भिक्षु धर्म रक्षित
16. प्रबंधकोष
17. भविष्य पुराण
18. भाषा सर्वेक्षण - ग्रीअर्सन
19. भोजपुरी भाषा और साहित्य - उदय नारायण तिवारी
20 भोजपुरी के कवि और काव्य - दुर्गा शकर प्रसाद सिह
21. मत्स्य पुराण



22. मानस के हस - अमृतलाल नागर

23. रत्नावली

24. ऋग्वेद

25. लिग पुराण

26. लोक रक्षक श्रीकृष्ण - राधे श्याम त्रिपाठी

27 लोरिकायन - अर्जुनदास केसरी

28. लोरिकायन एक अध्ययन - अर्जुनदास केसरी

29. वायु पुराण

30 वाराह पुराण

31. विध्य महात्म्य

32. शिव महिम्न स्तोत्र

33. सिख धर्म दर्शन - डॉ अर्जुनदास केसरी

34. स्वतन्त्रता सग्राम के स्वर - डॉ. अर्जुनदास केसरी

35. श्री गुरु ग्रथ साहिब

36. श्री मदभागवत् महापुराण

37. हर्षचरित्र

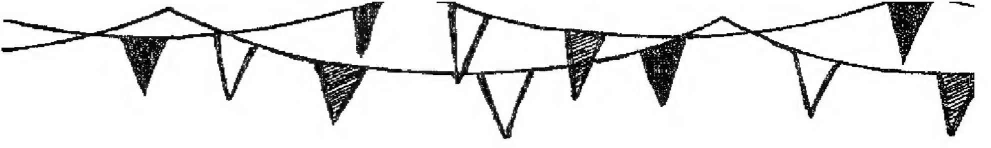
38. हिन्दी शब्द सागर - नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

39. हिन्दी साहित्य कोश - डॉ. धीरेन्द्र वर्मा

40 हिन्दुओं के देवी-देवता - कुँवर कन्हैया

41. वाराणसी दर्शन

42. विभिन्न जनपदो की विकास पुस्तिकाए



पत्र-पत्रिकाएं

1 अखण्ड ज्योति, अतएव, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
2. आज, वाराणसी
3 आज साय समाचार, वाराणसी
4. आधान, राबर्ट्सगज
5. कल्याण के विशेषाक
6. धर्मयुग, मुम्बई
7 भोजपुरी लोक, लखनऊ
8. लोकवार्ता शोध पत्रिका, राबर्ट्सगज
9. सेतु, देवरिया
10 पाती, बलिया